वैज्ञानिक चिंतन की आवाज़

तर्कशील पथ

TARKSHEEL PATH

मई – जून 2024



मई दिवस
(2)

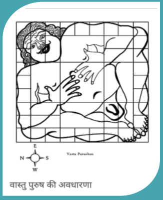
30



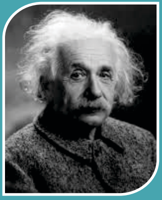
डार्क मैटर और डार्क एनर्जी
(9)



एडवर्ड जेनर
(12)



वास्तु शास्त्र
(23)



आइंस्टाइन के वैज्ञानिक कार्य का दार्शनिक आधार (37)

गरीबी न्याय से ख़तम होगी, दान देने से नहीं – नेल्सन मंडेला

हरियाणावी रागनी

पाखंडी यें कवि जगत म्ह गणे जणे हांडैं सैं

टेक- पाखंडी यें कवि जगत म्ह गणे जणे हांडैं सैं
तर्कहीन सब बात लिखैं सैं कवि बणे हांडैं सैं

1. पाखंडी यें कवि हमेशा ढोंगी बात सुणावैं सैं
ग्रन्थो की बात लिखैं यें इसनै ठीक बतावैं सै
कूड़ा करकट जितणा इस म्ह दिमागां बीच बिठावैं सैं
धर्म जात और लिंग का जग म्ह पूरा जहर फ्लावैं सैं
गैर तार्किक बात करें जां तणे तणे हांडैं सैं

2. मजा आवै इन्हैं ब्राह्मणवादी समाज विरोधी गाथां म्ह
इन्हीं काथां नै साच मान कै उलजे तर्कहीन बातां म्ह
इनसे बात ले लिखदे रैंह सैं लेकै लेखनी हाथां म्ह
झूठ लिखैं और ब्रह्म ज्ञान कैंह फसरे धर्म और जातां म्ह
गैर वैज्ञानिक बात लिखैं इसे कवि गणे हांडैं सैं

3. मेहनतकश के दुख दर्द पै नहीं भूल कै लीखैं
गैर वैज्ञानिक ढोंगी बातें गुरू से लिखणा सीखैं
राजाओं नै जुल्म करे सदा उनके जुल्म ना दीखैं
इनके जुल्म पै उंगली ठादयां फेर गणे यें झीखैं
इनके जुल्म पै ना लिखैं सुके बणे ठणे हांडैं सैं

4. वैज्ञानिक युग इब आरया सै बात तर्क की लिखो
भगत सिंह थे 'नास्तिक क्यों' यें उस तै भी कुछ सीखो
इन्सान जै समझो खुद को इन्सान भी दीखो
अगर तर्क पै बात लिखै कोए नहीं देख कै झीखो
अंग्रेज सिंह यें तर्कवादियों पै जणे-भुणे हांडैं सैं

अंग्रेज सिंह अलेवा
+91 87081 71193

मुख्य संपादक
बलबीर लौंगोवाल
balbirlongowal1966@gmail.com
98153 17028
संपादक
गुरमीत अम्बाला
tarksheeleditor@gmail.com
94160 36203
संपादकी मंडल
अजायब जलालाना (94167 24331)
कृष्ण कायत (98961 05643)

विदेशी प्रतिनिध्धि
अवतार बाई कनेडा
प्रधान TRSC (+1-672-558-5757)
अछर सिंह खरलवीर कवैंटरी (इंगलैंड)
(+44-748-635-1185)
मा. भजन सिंह कनेडा, बलदेव रहिपा टोरांटो

पत्रिका शुल्क :-
वार्षिक : 150/- रू.
विदेश : वार्षिक : 40 यू.एस.डॉलर
रचनाएं, पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के लिए पता:
मुख्य कार्यालय
तर्कशील भवन, संघेडा बाईपास
तर्कशील चौंक, बरनाला-148101
01679-241466, 98769 53561
tarkshiloffice@gmail.com
पत्रिका को पढ़ने के लिए लॉग ऑन करें:
www.tarksheel.org
Tarksheel Mobile App :
Readwhere.com

राजेन्द्र भदौड़, प्रकाशक,मुद्रक,स्वामी की तरफ से तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) द्वारा अप्पू आर्ट प्रैस, शाहकोट (जलन्धर) से मुद्रित करके मुख्य कार्यालय तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.), बरनाला, (पंजाब) से तर्कशील सोसायटी पंजाब व हरियाणा के माध्यम से वितरण के लिए जारी किया।

तर्कशील पथ पत्रिका हेतु शुल्क
पंजाब नैशनल बैंक में
तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) के नाम से
खाता सं. 0044000100282234
IFSC: PUNB0004400 में जमा करा सकते है।
एंव पत्रिका भेजने के लिए एड्रेस व शुल्क की स्क्रीन शॉट/रसीद मोबाइल नम्बर
+91 98156 70725 पर वट्सएप कर दें।

इस अंक में

आनलाईन पत्रिका को पढ़ने के लिए :

www.tarksheel.org,
http://tarksheelblog.
wordpress.com
सर्च करें: tarksheel :
www.archive.org
Readwhere.com

संपादकीय

भारतीय चुनाव में जनता की भूमिका

भारत में लोकसभा चुनाव का शोर अब अपने चरम पर है। पूंजीवाद का प्रतिनिधित्व करने वाले सत्तारूढ़ और बुर्जुआ राजनीतिक दल एक-दूसरे पर कीचड़ उछाल रहे हैं, वे सभी शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार की अनदेखी कर गैर जरूरी मुद्दों पर जनता का ध्यान भटका रहे हैं, क्योंकि, वर्तमान में मुख्य मुद्दा व्यक्तिगत प्रतिशोध और आरोप लगाकर खुद को ''बड़ा'' कहना है जनता को को उनके असली मुद्दों से भटकाकर अपने लिए वोट भुनाना है। जबकि सभी दलों में सभी भ्रष्ट आचरण चरम सीमा पर हैं। दलबदल का माहौल बेहद ''रोमांटिक'' है। हर राजनीतिक दल अपनी ''वॉशिंग'' मशीन लेकर घूम रहा है और ''आओ कागों हंस बन जाओ!'' का नारा लगा रहा है, साम्प्रदायिकता का प्रचार भी किया जा रहा है। देश को परेशान करने वाले भाषण दिये जा रहे हैं। किसी चुनाव आयोग का डर नहीं. जहां पूरा देश पूरी तरह से कॉरपोरेट एजेंडे के प्रभाव में है, वहीं ''विश्व गुरु'' भारत ने दुनिया का तीसरा सबसे प्रदूषित देश होने का 'सम्मान' हासिल कर लिया है. कॉरपोरेट सेक्टर का मुख्य एजेंडा लाभ कमाना और प्रदूषण फैलाना है। ''लोग उथले कुओं में जाते हैं''। पिछले कुछ दशकों से जहां साम्राज्यवाद समर्थक, पूंजीपति समर्थक, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के समर्थक कॉरपोरेटवादी मॉडल को आगे बड़ा रहे है, वहीं फासीवादी एजेंडा भी अपने चरम पर है। लेकिन ये सब जनता की ताकत से बड़ा नहीं है. मजदूर वर्ग अपना रुख मोड़ सकता है. आवश्यकता है चेतना, एकता और संघर्ष की। इन सभी चुनावों के माहौल में एक खबर भी आई है- ''नागालैंड के 6 जिलों के 4 लाख मतदाताओं में से कोई भी वोट देने नहीं गया।'' मणिपुर में लोगों के दमन देश भर देख रहा है। इस लिए आगे के विकल्प तलाशने जरूरी हैं ताकि दल बदल व भ्रष्ट आचरण से मुक्ति मिल सके। प्रसिद्ध क्रांतिकारी लेनिन ने कहा था: ''कुछ वर्षों बाद यह निर्धारित करना कि शासक वर्ग का कौन सा व्यक्ति संसद के माध्यम से लोगों पर अत्याचार करेगा और उन्हें कुचल देगा, मजदूर वर्ग को इस वास्तविकता को समझना होगा।'' यह समझना जरूरी है कि उनकी सबसे खराब हालत किसी किसी दैवीय शक्ति ने नहीं लिखी है, वह तो संसदों और विधानसभाओं ने लिखी जाती है। सरकारें बदलने / न बदलने से मजदूर वर्ग को मुक्ति नहीं है, जरूरत इस लुटेरी व्यवस्था को बदलने की है। आइए हम मई दिवस के शहीदों, ग़दरी बाबाओं, भगत सिंह, करतार सिंह सराभा के संदेश को आत्मसात करके चेतना की मशाल लेकर आगे बढ़ें।

मई दिवस : इतिहास और महत्व

प्रत्येक वर्ष दुनिया भर में 1 मई को मई दिवस (May Day) अथवा 'अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक दिवस' (International Worker's Day) के रूप में मनाया जाता है। यह दिवस जनसाधारण को नए समाज के निर्माण में श्रमिकों के योगदान और ऐतिहासिक श्रम आंदोलन का स्मरण कराता है।

मई दिवस का इतिहास

सर्वप्रथम वर्ष 1889 में समाजवादी समूहों और ट्रेड यूनियनों के एक अंतर्राष्ट्रीय महासंघ ने शिकागो में हुई हे मार्केट (Haymarket, 1886) घटना को याद करते हुए श्रमिकों के समर्थन में 1 मई को 'मई दिवस' के रूप में नामित किया था।

अमेरिका ने वर्ष 1894 में श्रमिक दिवस को एक अवकाश के रूप में मान्यता दी, जहाँ यह प्रत्येक वर्ष सितंबर के पहले सोमवार को मनाया जाता है। जल्द ही, कनाडा ने भी इस प्रथा को अपना लिया।

वर्ष 1889 में समाजवादी और श्रमिक दलों द्वारा बनाई गई संस्था सेकंड इंटरनेशनल (Second International) ने घोषणा की कि अब से 1 मई को अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक दिवस के रूप में मनाया गया।

वर्ष 1904 में, एम्स्टर्डम (Amsterdam) में इंटरनेशनल सोशलिस्ट कॉन्ग्रेस (International Socialist Congress) ने सभी सोशल डेमोक्रेटिक संगठनों और सभी देशों की ट्रेड यूनियनों को एक दिन में कार्य के 8 घंटे की प्रथा की कानूनी स्थापना के लिये एक मई को उत्साहपूर्वक प्रदर्शन करने का आह्वान किया।

अंततः वर्ष 1916 में अमेरिका ने वर्षों के विरोध और संघर्ष के पश्चात् आठ घंटे के कार्य समय को आधिकारिक पहचान देना शुरू किया।

हे मार्केट घटना

1 मई, 1886 को शिकागो में हड़ताल का रूप सबसे आक्रामक था। शिकागो उस समय जुझारू वामपंथी मजदूर आंदोलनों का केंद्र बन गया था।

1 मई को शिकागो में मजदूरों का एक विशाल सैलाब उमड़ा और संगठित मजदूर आंदोलन के आह्वान पर शहर के सारे काम काज बंद कर दिये गए , मशीनें रुक गईं।

मजदूर आंदोलन को कभी भी वर्ग-एकता के इतने शानदार और प्रभावी प्रदर्शन का एहसास नहीं हुआ था। इस आंदोलन ने अमेरिकी मजदूर वर्ग की लड़ाई के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ दिया।

हालाँकि इस दौरान शिकागो प्रशासन एवं मालिक चुप नहीं बैठे और मजदूरों की गिरफ्तारी शुरू हो गई। जिसके पश्चात् पुलिस और मजदूरों के बीच हिंसक झड़प शुरू हो गई, जिसमें 4 नागरिकों और 7 पुलिस अधिकारियों की मौत हो गई।

कई आंदोलनकारी, जो श्रमिकों के अधिकारों के उल्लंघन का विरोध कर रहे थे और काम के घंटे कम करने और अधिक मजदूरी की मांग कर रहे थे उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और आजीवन कारावास अथवा मौत की सजा दी गई।

मई दिवस - एक अवकाश से कहीं अधिक : श्रम न केवल उत्पादन में, बल्कि अन्य सभी आर्थिक गतिविधियों में भी एक महत्त्वपूर्ण कारक होता है। डेविड रिकार्डो और कार्ल मार्क्स जैसे क्लासिक अर्थशास्त्रियों ने उत्पादन के मुख्य स्रोत के रूप में श्रम को प्रमुख स्थान दिया।

इस प्रकार श्रमिक किसी भी देश के आर्थिक और सामाजिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। श्रमिकों की इसी भूमिका को एक पहचान देने और श्रमिक आंदोलनों के गौरवशाली इतिहास को याद करने के उद्देश्य से 'मई दिवस' अथवा 'अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक दिवस' मनाया जाता है।

विश्व के अधिकांश देशों में मई दिवस को एक 'अवकाश' घोषित किया गया है, विडंबना यह है कि नई पीढ़ी 'मई दिवस' को केवल एक अवकाश के रूप में ही जानती है, लोगों के जहन में 'मई दिवस' और श्रमिकों की भूमिका धीरे-धीरे धूमिल होती जा रही है।

मई दिवस और काम के आठ घंटे

मई दिवस का जन्म काम के घंटे कम करने के आंदोलन से अटूट रूप से जुड़ा हुआ है। काम के घंटे कम करने और

मजदूरों को उनके बुनियादी अधिकार दिलाने से संबंधित इस दिवस का मजदूरों के लिये एक विशेष राजनीतिक महत्त्व है।

जब अमेरिका में फैक्ट्री-व्यवस्था शुरू हुई, लगभग तभी यह संघर्ष भी सामने आया। हालाँकि अमेरिका में अधिक मज़दूरी की मांग, शुरुआती हड़ताल और संघर्ष में सर्वाधिक प्रचलित थी, किंतु जब मजदूरों ने अपनी मांगों को सूचीबद्ध किया तो काम के घंटे कम करने का प्रश्न और संगठित होने के अधिकार का प्रश्न केंद्र में रहा।

जैसे-जैसे शोषण बढ़ता गया, मजदूरों को अमानवीय रूप से लंबे काम के दिन और भी बोझिल महसूस होने लगे, इसके साथ ही काम के घंटों को कम करने की मांग भी और अधिक मज़बूत होती गई।

19वीं सदी की शुरुआत में ही अमेरिका में मजदूरों ने 'सूर्योदय से सूर्यास्त' (Sunrise to Sunset) तक के काम के समय के विरोध में अपनी शिकायतें स्पष्ट कर दी थीं।

ज्ञातव्य है कि वर्ष 1806 में अमेरिका की सरकार ने कुछ हड़तालियों के नेताओं पर मुकदमे चलाए। इस मामले में यह बात सामने आई कि मजदूरों से तकरीबन 19 से 20 घंटे तक कार्य कराया जाता था।

19वीं सदी का दूसरा और तीसरा दशक काम के घंटे कम करने के लिये हड़तालों से भरा हुआ है। इसी दौर में कई औद्योगिक केंद्रों ने तो एक दिन में काम के घंटे 10 करने की मांग भी निश्चित कर दी थी।

उल्लेखनीय है कि वह संघर्ष, जिससे 'मई दिवस' का जन्म हुआ, अमेरिका में वर्ष 1884 में 'काम के घंटे आठ करो' आंदोलन से ही शुरू हुआ था।

भारत में मजदूर दिवस

भारत में मजदूर दिवस पहली बार चेन्नई (तत्कालीन मद्रास) में 1 मई, 1923 को आयोजित किया गया था। यह पहल सर्वप्रथम लेबर किसान पार्टी के प्रमुख सिंगारवेलर द्वारा की गई थी।

लेबर किसान पार्टी के प्रमुख सिंगारवेलर ने इस अवसर को मनाने के लिये दो बैठकों का आयोजन किया। इनमें से एक ट्रिप्लिकेन बीच पर आयोजित की गई और दूसरी मद्रास उच्च न्यायालय के सामने समुद्र तट पर आयोजित की गई।

इन बैठकों में सिंगारवेलर ने एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें कहा गया था कि ब्रिटिश सरकार को भारत में मई दिवस या मजदूर दिवस पर राष्ट्रीय अवकाश की घोषणा करनी चाहिये।

मजदूर दिवस या मई दिवस को भारत में ''कामगार दिन'' के रूप में भी जाना जाता है, मराठी में इसे ''कामगार दिवस'' और तमिल में 'उझिपालार नाल' (Uzhaipalar Naal) कहा जाता है।

भारत में वर्ष 1986 का बाल श्रम अधिनियम, जिसके तहत 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को नियोजित करना प्रतिबंधित कर दिया, बेहतर श्रम मानकों को प्राप्त करने और बच्चों के साथ होने वाले दुर्व्यवहार को समाप्त करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम था।

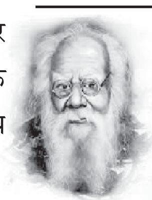
निष्कर्ष

मजदूर दिवस एक विशेष अवसर है जब दुनिया भर में लोग मजदूर वर्ग की सच्ची भावना और मजदूर आंदोलन का जश्न मनाते हैं। यह वह दिन है दुनिया भर की वर्किंग क्लास एकजुट होते हैं और अपनी एकता का प्रदर्शन करते हैं जो यह दर्शाता है कि वे समाज के मजदूर वर्ग के लिये सकारात्मक सुधार लाने हेतु किस प्रकार प्रभावी ढंग से संघर्ष कर सकते हैं।

कोरोना महामारी के समय विश्व भर में ऐसी कई घटनाएँ सामने आईं हैं, जिनमें देश के सामान्य वर्ग विशेष रूप से मजदूर वर्ग के अधिकारों का हनन देखा गया। गौरतलब है कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने भी सरकार से महामारी के दौरान देश के संवेदनशील वर्ग के अधिकारों की रक्षा करने का अनुरोध किया था। आवश्यक है कि सरकार मजदूर वर्ग के मुद्दों को सुने और नीति निर्माण में मजदूर वर्ग के प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित किया जाए।

......संकलित : गुरमीत अम्बाला

(स्त्रोतः इंडियन एक्स्प्रेस, गूगल, विकीपीडिया)



अनपढ़ होना उतनी बुरी बात नहीं है, लेकिन पढ़ा-लिखा होकर भी अंधविश्वासी, पाखंडी और मूर्ख होना बड़ा ही चिंता का विषय है। **- परियर ई वी रामासामी**

अंधविश्वास की शिक्षा

– तैयब हुसैन

1.

'हाऊद स्टील वाज टेम्पर्ड' उपन्यास का हिन्दी अनुवाद है 'अग्निदीक्षा'। इसकी भूमिका में पुस्तक के लेखक ने अपनी आपबीती बताई है। बचपन में वह एक इसाई स्कूल में पढ़ता था, वहां भूगोल शिक्षक सृष्टि का कारण भौगोलिक बताते थे। नैतिक क्लास में उसे ईश्वर द्वारा निर्मित बताया जाता था। वह नहीं समझ पाया कि दोनों में सही क्या है। तब उसने प्रिंसीपल से इस बिन्दु पर स्पष्ट होना चाहा। लेकिन बजाय उसे संतुष्ट करने के प्राचार्य ने उसका नाम स्कूल से काट दिया!

बात छोटी सी है। लेकिन वह बड़ी तब हो जाती है जब संस्कार के रूप में बड़े अपने बच्चों में यह दोगली आदत डाल देते हैं। परीक्षा में पास होने के लिए वह पृथ्वी के बनने का कारण वैज्ञानिक लिखता है, लेकिन विश्वास में जीवन भर यह भ्रम पाले रहता है कि उसे ईश्वर ने बनाया है।

इसी तरह जब कोई बच्चा अपने पढ़े लिखे अभिभावक को मंदिर, मस्जिद या गिरजा घर में प्रार्थना में कुछ मांगते सुनता है और बाहर यह कहते हुए पाता है कि 'बिना श्रम के कुछ भी हासिल नहीं होता' तो वह समझ नहीं पाता कि ईश्वर सच है या विज्ञान का सिद्धांत।

यह विडंबना ही है कि विज्ञान के अद्यतन आविष्कार प्रिंट मीडिया, रेडियो, टेलीविजन और इंटरनेट पर ऐसे अंधविश्वासों का प्रचार, प्रसार अब कुछ अधिक ही देखने में आ रहा है जिसका कोई तार्किक आधार नहीं, जैसे, किसी तांत्रिक अंगूठी या किसी तावीज द्वारा मनचाहे फल की प्राप्ति। या किसी असाध्य बीमारी का शर्तिया इलाज।

अपरिपक्व मस्तिष्क पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है जब कोई बडा़ इंजीनियर या नेता पूजा पाठ या नारियल फोड़कर कम्प्यूटर से किसी पुल या बांध का शुभारंभ करता है।

मैं शिक्षक था तो अपने विद्यार्थियों को ऐसे घाल मेल की परख इस तरह करने को कहता था कि एक साल सिर्फ 'विद्या की देवी' की आराधना करो और इम्तहान दो। फिर दूसरे साल सिर्फ पढ़ों और परीक्षा दो। देखो तुम्हें किस हालत में सफलता मिलती है!

जब किसी टॉनिक को दूध के साथ खाया जाए तो फिर कैसे पता चलेगा कि लाभ टॉनिक से हो रहा है या दूध से? क्योंकि दूध भी तो अपने आप में टॉनिक ही है।

इसी तरह ढेरों व्यवहारिक उदाहरण हमारे आस पास भरे पड़े हैं जिनमें विरोधाभास का पता चलता है। उदाहरणार्थ जब किसी दुर्घटना में कोई लंगड़ा हो जाता है तो लोग कहते पाए जाते हैं कि ईश्वर की कृपा थी कि जान बच गई। अपंग होकर ही रह गया। किसी दुर्घटना में एक ही परिवार के कुछ लोगों की मृत्यु हो जाती है और कुछ जीवित बच जाते हैं। तब कहते सुना जाता है कि ईश्वर ने पूरे परिवार को नेस्तनाबूद होने से बचा लिया। उसका शुक्रगुजार होना चाहिए।

यात्रा के समय छींक आ जाने या बिल्ली के रास्ता काट देने को अपशकुन (काम का नहीं होना) मानकर तत्काल जरूरी सफर भी स्थगित कर दिया जाता है।

हमने तों चमचमाती नई कार में ड्राइवर के आगे नींबू और मिर्ची गूंथकर लटकाए देखा है, आलीशान भवन के किसी कोने में राक्षस का मुंह बना हुआ भी देखा है। यह किसी की बुरी नज़र से कीमती वस्तुओं को बर्बाद होने से बचाने के लिए किया गया टोटका है जो न जाने कितनी सदियों से चला आ रहा है।

ट्रक या बस के पीछे जूते की तस्वीर और 'बुरी नजर वाले तेरा मुंह काला' की उक्ति तो आपने देखी पढ़ी होगी ही। मंत्र तंत्र और झाड़ फूंक कर विश्वास भी ऐसी ही समझ का हिस्सा है।

2.

अब आइए कुछ बड़े अंधविश्वासों की ओर रुख किया जाए, एक नामी चिक्तिसक ने अपने यहाँ बोर्ड लगाया था कि 'आपका ठीक होना या न होना भगवान की कृपा पर निर्भर है। हम तों सिर्फ माध्यम हैं।' ऐसे मुस्लिम सर्जन से

भी मेरी मुलाकात है जो बड़े ऑपरेशन के पहले दो रिकात नमाज अदा करते हैं। ऐसे चिक्तिसकों के जांच घर में विभिन्न देवताओं या मक्का मदीना का चित्र टंगा होना तो आम बात है।

ऐसे अंधविश्वासों का चरम तब हो जाता है जब अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) का सर्वोच्च पदाधिकारी विज्ञान तकनीक और प्रौद्योगिक की उपलब्धियों को मुंह चिढ़ाते हुए अंतरिक्ष मे यानों के प्रक्षेपन के पहले ईश्वरीय कृपा के लिए किसी मंदिर में पूजा अर्चना करता है या उस अंतरिक्ष यान का प्रतिरूप पहले देवता को अर्पित करता है। चौबीस सितंबर 2014 को मंगलयान के सफल प्रक्षेपण के पहले 4 नवंबर 2013 को इसके अध्यक्ष राधाकृष्णन ने तिरूपति वेंकटेश्वर मंदिर में ऐसा ही विधि विधान किया था और उनके पूर्ववर्ती अध्यक्ष माघवन नायर भी यही किया करते थे।

इतिहास का अनुमान यह है कि यदि मानव जब प्राकृतिक घटनाओं का कारण नहीं जान पाता था तब उसने ऐसी आलौकिक शक्ति की कल्पना की थी जिसके द्वारा वह प्रतिपादित होता है। यह उसकी अज्ञानता थी। लेकिन आज का वैज्ञानिक आविष्कार तो प्रमाणित सिद्धांत का प्रतिफल है या गणित से सिद्ध किसी मान्य सूत्र का नतीजा। फिर भी दैवी शक्ति का हस्तक्षेप मानना हमारे मस्तिष्क का दिवालियापन ही कहा जाएगा।

3.

कुछ साल पहले योजनाबद्ध तरीके से एक दिन एक ही समय देश भर में मूर्तियां दूध पीने लगी। 21 सितंबर 1995 की इस अनहोनी को धर्मविशेष के शक्तिवान होने से जोड़ा गया। इसी तरह नील आर्मस्ट्रांग का पहला कदम जब चांद पर पड़ा तो मुल्लाओं ने मुसलमानों के बीच अफवाह फैलाया कि वहां अजान की आवाज़ सुनी गई।

पहली घटना के बारे में भौतिक विज्ञान का सिद्धान्त यह है कि सीधे खड़े संगमरमर के पत्थरों से दूध भरे चम्मच का किनारा छूते ही गुरूत्व के सिद्धान्त के कारण दूध खिंच जाता है। यह विज्ञान के नियमों के कारण हुआ था। कोई चमत्कार नहीं था।

दूसरा प्रचार तो निरा अफवाह ही था। जैसे हाल के भूकंप (25 अप्रैल 2015) के बाद लोगों को आसमान में चांद उलटा दिखाई देने लगा, जबकि वह वैसा ही था जैसा होना चाहिए।

एक मंदिर में बिना सहारे लटकी एक मूर्ति को भी तब दैवी चमत्कार ही माना जाता था जबकि इसे 'मैग्नेटिक लेविटेशन' यानी चुंबकीय उत्तोलन से संभव बनाया गया था। दो समान शक्तिशाली चुंबकों के बीच किसी सूई को संतुलित करके बिना सहारे हवा में लटकाया जा सकता है। अंतरिक्ष में यान से निकलकर शून्य में तैरना और ब्रह्माड में बिना सहारे तारों, ग्रहों, उपग्रहों के होने चलने और परिक्रमां करने के पीछे भी आकर्षण का सिद्धान्त ही काम करता है।

लेकिन घोर आश्चर्य तब होता है जब इन सिद्धान्तों का जानकर भी किसी इतर अज्ञात शक्ति पर भरोसा करने लगता है और कभी कभी अपने कामों से अनर्थ कर डालता है।

इधर के एक समाचार में राजधानी दिल्ली से सटे 'हाईटेक सिटी' के रूप में मशहूर गाजियाबाद में एक वृद्ध मां को उसके तीन बेटे चप्पल से तब तक पीटते रहे जब तक वह मर नहीं गई। ऐसा किसी तांत्रिक बाबा के निर्देश पर किया गया था क्योंकि मां पर किसी भूत प्रेत का साया था। हद है कि उन बेटों में एक डाक्टर और एक इंजीनियर भी था। (चावार्क ब्लॉग)। गांवों में गरीब औरतों को डायन कहकर यंत्रणा देना या मार देना तो आए दिन ही अखबारों की सुर्खियां बनता है।

अपनी अज्ञानता और अंधविश्वास की वजह से प्राचीन काल से आज तक जाने कितने पशु पक्षियों और मनुष्यों को हमने देवताओं को खुश करने के बहाने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए बलि दी है। आज भी देते जा रहे हैं।

4.

ऐसा नहीं कि ऐसे अंधविश्वासों के खिलाफ लड़ने के लिए किसी ने प्रयास नहीं किया। महात्मा बुद्ध, महावीर, आर्यभट्ट, चार्वाक, एनेक्सा गोरस, प्रोटागोरस, ग्रियोंडानो, गैलीलियो, कोपर निकस, ब्रूनों से लेकर नरेन्द्र दाभोलकर तक ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिन्होंने जान देकर भी वैज्ञानिक सच उजागर करने और उन्हें भविष्य के लिए बचाकर रखने की कोशिश की। लेकिन इसके विपरीत समाज में अपना उल्लू सीधा करने के लिए इसे धर्म के खिलाफ माननेवाले संगठित समुदाय ने बार-बार इस झूठे भ्रम को अपने हित में बचाए रखा है। इसलिए इसे धार्मिक अज्ञानता से अधिक धर्म

की सोची समझी राजनीति मानना अधिक सही होगा।

यह तो मनोवैज्ञानिक सच है कि कोई बच्चा भी अंधेरी कोठरी में जाने से तभी तक डरता है जब तक उसमें भूत दिखाई देता है। रोशनी होने पर या एक बार अंधेरे में भी घूम लेने पर उसका भ्रम जाता रहता है।

आदमी ने आदमी को दास बनाया। खुद बैठकर उसकी कमाई खाई। खुद की चेतना का विकास किया। पर उसकी चेतना कुंद ही रहने दी। तभी वह शासित और शोषित रह सकता है। भाग्य, पूर्वजन्म की कमाई, स्वर्ग-नर्क, ईश्वर प्रदत्त वर्ण व्यवस्था और काम का बंटवारा उसने खुद से पोथियों में लिखा और उसे कुदरत का नियम बताया।

5.

आज भी इस तरही की साजिश देखने में आ रही है। इधर सनातन धर्म के मूलवादी नेताओं ने भारत की सत्ता संभालते ही आई.आई.एम.एस., आई.आई.टी., एन.सी.ई.आर.टी., आई.सी.एच.आर. समेत दर्जन भर से ज्यादा महत्वपूर्ण संस्थाओं के सर्वोच्च पद पर ऐसे ही लोगों को बिठाया है जिन्हें अवैज्ञानिकता फैलाने में महारत हासिल है।

'द सोसाइटी ऑफ साइंटिफिक टेम्पर' संस्था का गठन 1964 में हुआ था। इस संस्था की सदस्यता के लिए यह प्रतिज्ञा पत्र था: 'मैं मानता हूं कि ज्ञान मानव प्रयासों से ही प्राप्त किया जा सकता है न कि किसी किस्म के दैवी इलहाम से। सभी तरह की समस्याओं का निराकरण हर हाल में मनुष्य के नैतिक और बौद्धिक संसाधनों से ही संभव है ना कि अलौकिक शक्तियों के आवाहन से।' लेकिन अब इसके विपरीत उसमें धर्म, ईश्वर और आस्था शब्द का समावेश कर दिया गया है।

गोविंद पानसरे ने शिवाजी पर किताब लिखकर विभिन्न प्रमाणों से उन्हें धर्मनिरपेक्ष प्रशासक सिद्ध किया जबकि महाराष्ट्र में शिवसेना और संघ समर्थक उन्हें हिंदू राजा और मुसलमानों का दुश्मन होने पर आस्था रखते हैं। पनसरे की भी हत्या दाभोलकर की तरह कर दी गई।

तमिल लेखक पेरूमल मुरूगन ने एक उपन्यास में मंदिर पर मेले में संतान इच्छित स्त्रियों के पर पुरुष से समागम की पुरानी प्रथा का वर्णन किया है। उस पर मुकदमा किया गया। उसकी किताबें जब्त कराई गई। लेखक ऐसा मानसिक दबाव डाला गया कि उसने भविष्य में किसी भी तरह के लेखन से कसम खा ली।

आर्यभट्ट के शोध ग्रंथ में 'नहीं' की जगह 'हाँ' जड़ दिया और 'हाँ' की जगह 'नहीं' में बदल दिया। इस तरह सच कहने वालों के लेखन या तो नष्ट कर दिए गए या अपने पक्ष में उसका संशोधन कर दिया गया।

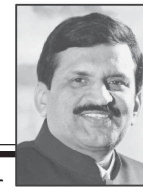
अखिल भारतीय गो सेवा के अध्यक्ष शंकर लाल का ''इकोनॉमिक टाईम्स'' (7 अप्रैल 2015) में 'डिफाइंग सायंस' शीर्षक से एक लेख छपा है। इसमें कहा गया है कि 'जब आप गाय के दूध से बने सौ ग्राम घी का दीया जलाते हैं तो सारे वातावरण को ताजा ऑक्सीजन मिलता है। यह भारतीय गाय की शक्ति है।' विज्ञान के अनुसार किसी कार्बनिक पदार्थ के जलने की प्रक्रिया में ऑक्सीजन की खपत होती है और इससे कार्बन डायक्यसाइड निकलता है।

भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद के अध्यक्ष पद पर ऐसे प्रोफैसर सुरदर्शन राव नियुक्त हुए जो वेद को इतिहास मानते हैं और जाति प्रथा को न्यायपूर्ण और उचित ठहराते हैं। पुणे के फिल्म एंड टेलीविजन इंस्टीच्यूट ऑफ इंडिया में सरकार द्वारा नामित अध्यक्ष गजेंद्र सिंह चौहान के रूप में जिसे बिठाया गया है, उसका फिल्मी दुनिया में योगदान **महाभारत** धारावाहिक में युधिष्ठिर की भूमिका निभाना भर है। वहां के शिक्षार्थियों ने उन्हें हटाने के लिए जबर्दस्त आंदोलन किया। इस तरह आनेवाला पाठ्यक्रम भी अब अवैज्ञानिक और भगवां रंग में रंगा होगा।

जब सरकार का मुखिया ही गणेश की गर्दन पर हाथी के सिर होने को प्राचीन भारत में प्लास्टिक सर्जरी का प्रमाण, पांडवों का जन्म नियोग पद्धति से होना और पुष्पक विमान की कपोल कल्पित कथा को भारत में वायुमान का आविष्कर मानता है तो बाकी की बात तो छोड़ दी दीजिए। उनमें पूछा जा सकता है कि भारतीय लोककथाओं में तो चांद पर चंदन के पेड़ के नीचे बुढ़िया दाई चरखा कातती थी जबकि वहां जाने पर उदभिज में घास तक और जीव में चींटी तक नहीं पाई गई। क्या किसी कोने में इन वैज्ञानिक कारनामों का कही कोई बनाने का फॉरमूला भी लिखा मिला है? तो जल्दी ही उसे दुनिया के सामने रखकर भारत के नाम पेटेंट करा लेना चाहिए, इस तरह दुनिया के सारे महत्वपूर्ण

शेष पृष्ठ 7 पर

अंधविश्वास के कारण महिला की हत्या



डॉ. दिनेश मिश्र

खैरागढ़ जिले के ग्राम भरदा काला में एक महिला की जादू टोने के संदेह में हत्या करने की घटना की कड़ी निंदा करते हैं। जादू टोने का कोई अस्तित्व नही हैं। ग्रामीणों को अंधविश्वास में पड़कर कानून हाथ में नहीं लेना चाहिए। ग्राम भरदा काला में जादू टोने कर बीमार करने के संदेह में मिलवंतीन बाई नामक अधेड़ महिला की हत्या उसके ही पड़ोस में रहने वाले युवक ने कर दी है, सोहन बघेल नामक आरोपी की बहन कुछ दिनों से बीमार थी जिसकी बीमारी का संदेह उक्त पड़ोसी व उसका परिवार मिलवंतीन बाई को मानता था और उसकी बीमारी का चिकित्सकीय इलाज कराना छोड़ किसी बैगा से झाड़ फूंक करवा रहा था और बीमारी के ठीक न होने पर बैगा के कारण अन्धविश्वास में आकर कर पड़ोसी महिला मिलवंती की हंसिया से वार कर हत्या कर दी जो अत्यंत दुखद है।

पिछले कुछ दिनों में टोनही/डायन के सन्देह में हत्या, मारपीट , प्रताड़ना की घटनाएं सामने आयी हैं। सिर्फ अंधविश्वास, जादू टोने जैसी भ्रामक मान्यताओं पर भरोसा कर किसी निर्दोष महिला एवं उसके परिवार पर हमला करने की घटनाएं, अनुचित है, दोषियों पर कड़ी कार्यवाही होनी चाहिए।

हर व्यक्ति की बीमारी, समस्या और उसके कारण अलग-अलग होते हैं जिनका समाधान सही चिकित्सकीय उपचार, तर्कसंगत उपाय से किया जा सकता है। बीमारियाँ अलग अलग कारणों से होती हैं। संक्रमण होने से, दुर्घटना होने, कुपोषण से व्यक्ति बीमार होता है संक्रमण भी विभिन्न बैक्टीरिया, वायरस, फंगस से होता है, तथाकथित जादू टोने से कोई बीमार नही हो सकता, क्योंकि जादू टोने जैसी काल्पनिक मान्यताओं का कोई अस्तित्व ही नहीं है, इस लिए तथाकथित जादू टोने से ना ही कोई व्यक्ति किसी को मार कर सकता है, न ही किसी को परेशानी में डाल सकता हैं और न ही किसी व्यक्ति का किसी प्रकार से फसल आदि का कोई नुकसान कर सकता है। जादू टोने, टोनही, डायन की मान्यता सिर्फ अंधविश्वास है। जिसका का कोई अस्तित्व नहीं है, और इस प्रकार के शक या सन्देह में किसी भी महिला को प्रताड़ित करना उसके व उसके परिवार के साथ मारपीट करना, अग्निपरीक्षा लेना, उसको जान से मारना अनुचित, क्रूर और अपराधिक है। ग्रामीणों को इस प्रकार के अंधविश्वास में नहीं पड़ना चाहिए। आरोपी को कड़ी से कड़ी सजा मिले ताकि भविष्य में कोई भी व्यक्ति इस प्रकार की अनुचित हरकत करने की चेष्टा ना कर सके.

देश के अनेक प्रदेशों में डायन/टोनही के सन्देह में प्रताडना की घटनाएँ आम है , जबकि कोई नारी टोनही या डायन नहीं हो सकती, उसमें ऐसी कोई जादुई शक्ति नहीं होती जिससे वह किसी व्यक्ति, बच्चों या गाँव का नुकसान कर सके। जादू-टोने के आरोप में प्रताड़ना रोकना आवश्यक है। अंधविश्वासों के कारण होने वाली टोनही प्रताड़ना/बलि प्रथा जैसी घटनाओं से भी मानव अधिकारों का हनन हो रहा है। जनजागरूकता के कार्यक्रमों से ही अंधविश्वास का निर्मूलन सम्भव है।

अध्यक्ष
अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति

पृष्ठ 6 का शेष

आविष्कर चुटकी बजाते हमारी झोली में आ जाएंगे। ऐसी ही हास्यापद बातों की वजह से भारत को विकसित देश साधुओं, सपेरों और जाहिलों का देश मानते थे। विगत 85 सालों से किसी भी भारतीय वैज्ञानिक को विज्ञान के किसी भी क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार नहीं मिला है।

6.

वास्तव में एक बार फिर हमें कट्टरपंथी किसी काल्पनिक सुखद अतीत का सपना दिखाकर मूर्ख रखने और दीर्घकालीन शोषण और शासन का षंडयंत्र रच रहे हैं। उधर इस्लाम के इतिहास में जब खलीफा उमर ने सिकंदरिकया को जीता तो वहां उसने उस दौर की दुनिया के सबसे बड़े पुस्तकालय को 'याहे या अल नहवी' कहते हुए आग लगा दी। यानी 'अगर पुस्तकें कुरान के साथ तर्क करती हैं तो इनकी हमारे लिए कोई जरूरत नहीं है और अगर ये कुरान की विरोधी हैं तो इनको नष्ट कर दिया जाए,' (समयांतर, जून 2015)।

समय रहते सभी कौमों को दोनों कट्टरपंथियों की साजिशों से सावधान हो जाना चाहिए ताकि जेहनी गुलामी से हमें जितनी जल्दी हो सके निजात मिल सकें।

ooooo

तारों की दुनिया

– प्रियम्वदा

जब मैं तुम लोगों की उम्र की थी, मुझे ब्रह्माण्ड की कहानियाँ बहुत रोचक लगती थीं। तारे, ग्रह, नक्षत्र बहुत आकर्षित करते थे। तारों की दुनिया के बारे में मेरे दादा और दादी कई सारी कहानियाँ सुनाया करते थे, जिन्हें मैं बहुत कौतूहलवश सुना करती थी।

शाम को सूर्यास्त के बाद में इन्तज़ार करती थी तारों को देखने का, यह देखना काफ़ी मज़ेदार होता था कि किस तरह आसमान में पहले एक तारा दिखता, फिर दूसरा-तीसरा और कुछ ही देर में पूरा आसमान, असंख्य तारों की टिमटिमाहट से भर जाता। जैसे-जैसे रात का आकाश भरता जाता, मेरे दिमाग़ में सवाल भी भरते जाते।

हर रोज़ अँधेरा होने से पहले ही मैं अपनी तैयारी करके बैठ जाती थी यह पता करने के लिए आख़िर ये तारे किन रास्तों से होकर आसमान में पहुँचते हैं? ध्रुव तारे के बारे में तो कई सारी लोक कथाएँ मशहूर थीं जो यह बताती थीं कि ध्रुव तारे को 'ईश्वरीय' वरदान प्राप्त है अपनी जगह पर अटल रहने का। मगर इन कथाओं को सुनने के बाद और भी सवाल जन्मते थे कि सिर्फ ध्रुव तारा ही क्यों इतना चमकदार और अपनी जगह पर अटल है? बाकी तारों के साथ इतना भेदभाव क्यों है? सबकी अलग-अलग चमक के पीछे क्या कारण हो सकते हैं? ग्रह हमारे करीब हैं लेकिन तारे दूर हैं। क्या ये दूरियाँ मापी जा सकती हैं?

ये सभी सवाल आपके मन में भी उठते होंगे।

जब इन सभी प्राकृतिक घटनाओं के पीछे के वैज्ञानिक कारण मनुष्य को नहीं पता थे तो उन्हें लेकर लोक कथाओं और दैवीय गाथाओं की रचना हुई। लेकिन जैसे-जैसे विज्ञान तरक़्क़ी करता गया, इन सभी सवालों का सटीक जवाब हमें पता चलता गया। अब लोक कथाएँ मनोरंजक कहानियों के रूप में रह गयी हैं। आज विज्ञान और तकनोलॉजी ने इतनी तरक्की कर ली है कि ब्रह्माण्ड के बारे में हमारे अनेक अनसुलझे सवालों के जवाब ढूँढे जा चुके हैं और वैज्ञानिक लगातार नयी खोजें करते जा रहे हैं। विज्ञान के नियम केवल पृथ्वी पर नहीं बल्कि अथाह अन्तरिक्ष में भी लागू होते हैं। तारों की रचना से लेकर उनकी चमक और रोशनी के पीछे का रहस्य, उनमें लगातार होने वाले परिवर्तन, उनके विनाश का कारण आज विज्ञान और भौतिकी के नियमों द्वारा जानना बहुत आसान हो गया है।

भौतिकी के नियमों को समझने के बाद मुझे यह मालूम पड़ा कि तारे किसी एक जगह से नहीं आते और न ही वे एकाएक आकाश में प्रकट होते हैं। वे अन्तरिक्ष में मौजूद रहते हैं पर सूर्य की चमक के आगे उनकी रोशनी फीकी पड़ जाती है और वे दिन में दिखायी नहीं देते। इतना ही नहीं चन्द्रमा के धीमे प्रकाश में भी कई तारे लुप्त हो जाते हैं। आकाश में दिखने वाले कई सारे तारों में कुछ तारे तो सूर्य से भी अधिक प्रकाशवान हैं लेकिन हमसे बहुत अधिक दूर होने के कारण उनकी चमक कम लगती है और वे मन्द प्रतीत होते हैं। ठीक वैसे ही जैसे अगर हम किसी 100 वॉट के एक बल्ब को बहुत करीब से देखते हैं तो हमारी आँखें चकाचौंध हो जाती हैं परन्तु वही बल्ब 100 मीटर की दूरी से देखने पर हमें दिये जैसा दिखता है।

ध्रुव तारे के भी अपनी जगह अटल होने का वैज्ञानिक कारण मुझे समझ में आया जो काफ़ी मज़ेदार है। जैसा कि सभी जानते है पृथ्वी एक लट्टू की तरह अपनी धुरी पर चारों ओर घूमती है। अगर तुम्हे लट्टू को घूमते हुए देखा होगा तो वह पाया होगा कि जिस धुरी पर वह घूमता है, वह स्थिर नहीं होती है। वह धीरे-धीरे कोण बनते हुए घूमा करती है। ठीक इसी तरह पृथ्वी की धुरी भी अन्तरिक्ष में स्थिर नहीं है। यह धुरी आज उत्तर दिशा में ध्रुव तारे की ओर झुकी है। पृथ्वी धीरे-धीरे घूमती हुई लगभग 20,000 वर्षों में एक चक्कर पूरा करती है। इसका मतलब यह है कि हमेशा ही यह धुरी ध्रुव तारे की ओर नहीं होगी। आज से करीब-करीब 5000 साल पहले हमारे पुरखों को ध्रुव तारा घूमता नज़र आता होगा क्योंकि उस वक्त अटल स्थान था थुबैन तारे का। आने वाले भविष्य में ध्रुव तारे की जगह एक नया तारा अटल स्थान ग्रहण करेगा।

तारों के जीवन से लेकर उनके खत्म होने तक की

शेष पृष्ठ 11 पर

डार्क मैटर और डार्क एनर्जी

– चंद्रभूषण

फिजिक्स या नैचुरल फिलॉस्फी को लेकर कोई भी बुनियादी मिजाज की चर्चा अभी **डार्क मैटर और डार्क एनर्जी** पर आकर अटक जाती है। हाल में एक फंडामेंटल पार्टिकल म्यूऑन पर लिए गए दो असाधारण प्रेक्षणों को लेकर पूरी दुनिया में जबर्दस्त सनसनी देखी गई लेकिन कई भौतिकशास्त्री इस बात को लेकर ही तरंगित दिखे कि इससे पार्टिकल फिजिक्स के स्टैंडर्ड मॉडल को लेकर अर्से से बनी संतुष्टि समाप्त होगी और वैज्ञानिक अपनी पूरी ताकत डार्क मैटर और डार्क एनर्जी जैसे बड़े रहस्यों को समझने में लगा सकेंगे।

जाहिर है, सृष्टि के मूलभूत कारोबार में दिलचस्पी रखने वाले एक आम इंसान के लिए यह जानना जरूरी हो गया है कि ये दोनों चीजें आखिर हैं क्या, और विज्ञान के लिए इन्होंने अचानक इतना केंद्रीय महत्व कैसे ग्रहण कर लिया है।



पहली मुश्किल तो द्रव्य और ऊर्जा के इन रूपों के साथ डार्क जैसा साझा शब्द जुड़ा होने से पैदा होती है। डार्क सीक्रेट और डार्क मैजिक जैसी जगहों पर इसका इस्तेमाल गर्हित या त्याज्य जैसे खराब अर्थ में होता रहा है। लेकिन यहां डार्क का मतलब सिर्फ इतना है कि वैज्ञानिक इनके होने को लेकर तो आश्वस्त हैं, लेकिन इसके अलावा इनका कुछ भी सिर-पैर फिलहाल उनकी समझ से बाहर है। दूसरे शब्दों में कहें तो डार्क शब्द यहां 'अज्ञात' के अर्थ में आया है। उन्नीसवीं-बीसवीं सदी के संधिकाल में खगोलशास्त्रियों को डार्क मैटर का कुछ-कुछ अंदेशा होना शुरू हो गया था, लेकिन तब के जीनियस फ्रांसीसी गणितज्ञ हेनरी प्वांकारे ने इसके लिए डार्क के बजाय 'ऑब्स्क्योर' (अस्पष्ट) विशेषण इस्तेमाल किया था।

वजन का हेर-फेर

सबसे पहले 1933 में एक गैलेक्सी क्लस्टर (नीहारिका समूह) के अध्ययन के दौरान यह बात उभरकर आई थी कि अंतरिक्ष में दर्ज की जाने वाली आकाशगंगा जितनी या उससे बड़ी चीजों का कुल वजन उनमें मौजूद तारों, ग्रहों, उपग्रहों और धूल वगैरह के सम्मिलित वजन जितना होने के बजाय उसका कई गुना होता है- कभी-कभी तो सौ गुने से भी ज्यादा। यहां इस ब्यौरे में जाने की गुंजाइश नहीं है कि किसी नीहारिका (गैलेक्सी) में मौजूद अलग-अलग पिंडों का और पूरी नीहारिका या नीहारिकाओं के समूह का वजन नापने का क्या तरीका है। इसके कई तरीके हैं और सब के सब अपनी सटीकता में पक्के तौर पर आजमाए हुए हैं।

इन विशाल आकाशीय संरचनाओं में किसी भी उपाय से प्रेक्षित न की जा सकने वाली कोई ऐसी चीज मौजूद है, जिसमें वजन के अलावा दर्ज करने लायक और कुछ नहीं है, और जिसे समझने के लिए छोटे स्तर पर उसकी कोई बानगी भी मौजूद नहीं है, यह बात 1970 के दशक तक पक्की हो गई थी। फिर हमारी अपनी आकाशगंगा के अध्ययन से पता चला कि इसके बाहरी तारों की रफ्तार काफी तेज है। सौरमंडल की तरह शनि, यूरेनस और नेपच्यून जैसे बाहरी ग्रहों के अपनी कक्षा में तुलनात्मक रूप से धीमा, और धीमा होते जाने जैसा कोई मामला वहां नहीं है। यह तभी संभव था, जब इसमें बाहर कोई अनदेखा वजन मौजूद हो।

इस तरह डार्क मैटर ने अनुमान से हटकर एक ठोस चीज की शक्ल अख्तियार कर ली। फिर जल्द ही यह हिसाब भी लगा लिया गया कि यह अनजाना द्रव्य पूरे ब्रह्मांड में वजन के हिसाब से सामान्य द्रव्य का-जिसमें तारों, ग्रहों-उपग्रहों, ब्लैक होल और धूल-धक्कड़ से लेकर हम-आप भी शामिल हैं-लगभग छह गुना है। अभी तो नीहारिकाओं के गुरुत्वीय प्रेक्षणों में ऐसी जगहों पर भी भारी-भरकम गुरुत्व दर्ज किया जा रहा है, जहां तारे या तो बिलकुल नदारद हैं या उनकी संख्या बहुत ही कम है। इससे डार्क मैटर को प्रेक्षण या गणना की चूक या फिर किसी अवधारणात्मक गड़बड़ी का नतीजा मानने वाली सोच लगभग अप्रासंगिक हो गई है।

फैलाने वाली ऊर्जा

डार्क एनर्जी अलबत्ता बहुत हाल की चीज है और एक मामले में यह डार्क मैटर से भी कम 'डार्क' है। डार्क मैटर के साथ किसी भी उपाय से नजर न आने वाली बात जरूर जुड़ी

है, लेकिन डार्क एनर्जी का किस्सा 1998 में इसके नजर आ जाने के साथ ही शुरू हुआ। ब्रह्मांड फैल रहा है, यह जानकारी 1930 के दशक में हो गई थी, जब आइंस्टाइन का जलवा अपने चरम पर था। यह और बात है कि खुद आइंस्टाइन ब्रह्मांड के स्टेडी स्टेट (स्थिर अवस्था) मॉडल के पक्षधर थे और अपनी पूरी दिमागी क्षमता उन्होंने इसके फैलाव से जुड़े प्रेक्षणों को बैलेंस करने में लगा दी थी।

बहरहाल, ब्रह्मांड के फैलने की गति को लेकर लगातार काम चलता रहा और इस कोशिश में जुटे दो अमेरिकी और एक ऑस्ट्रेलियाई वैज्ञानिक एडम रीस, सॉल पर्लमटर और ब्रायन शिमट 1998 में अपने इस प्रेक्षण से चकित रह गए कि जो गैलेक्सी धरती से जितनी दूर है, उसके दूर भागने की रफ्तार उतनी ही ज्यादा बढ़ी हुई (एक्सिलरेटेड) है। बाद में इसके लिए उन्हें नोबेल प्राइज भी मिला। इस प्रेक्षण की व्याख्या करना तब तक के ब्रह्मांडीय मॉडल के बूते की बात नहीं थी।

उस समय तक ऐसा माना जाता था कि ब्रह्मांड अपने प्रारंभ बिंदु बिग बैंग (महाविस्फोट) के झटके से ही फैल रहा है। जांचने की बात इतनी ही है कि आगे यह लगातार फैलता जाएगा, या एक बिंदु के बाद ठहर जाएगा, या फिर फैलाव पूरा होते ही सिकुड़ने लगेगा और सिकुड़ता हुआ वापस अपने प्रारंभ बिंदु में लौट आएगा (बिग क्रंच थीसिस)। ये सारे अनुमान ब्रह्मांड के त्वरित फैलाव की बात साबित होने के साथ ही बेमानी हो गए। ध्यान रहे, फैलाव की रफ्तार लगातार तेज होते जाने का यह प्रेक्षण सिर्फ 22-23 साल पुराना है।

त्वरित फैलाव के लिए किसी अतिरिक्त बल या ऊर्जा की जरूरत होती है। यह भला कहां से आ रही है? इसका स्वरूप क्या है? यह शुरू से किसी और रूप में मौजूद थी या अचानक पैदा हो गई? अगर बीच में पैदा हुई तो कब? और सबसे बड़ा सवाल यह कि इस ऊर्जा का गणित क्या होगा?

आकाशी मशालें

इनमें से कुछ सवालों के जवाब आसानी से खोज लिए गए। ब्रह्मांड का फैलाव नापने के लिए इन वैज्ञानिकों ने इसके सबसे प्रामाणिक उपाय 1-ए सुपरनोवा का सहारा लिया था, जिसे मानक मशाल (स्टैंडर्ड कैंडल) का दर्जा हासिल है। 1-ए सुपरनोवा वाइट ड्वार्फ तारों के किसी और तारे से जुड़ने पर होने वाले विस्फोट को कहते हैं। इसका सीधा सा फॉर्मूला है। 30 लाख टन प्रति घनमीटर से ज्यादा घनत्व वाला द्रव्य जब 50 करोड़ डिग्री सेल्सियस से ज्यादा तापमान पर पहुंचता है तो उसमें कार्बन फ्यूजन होता है और इस विस्फोट में वह एक खास रोशनी के साथ धधकता है। वाइट ड्वार्फ (श्वेत वामन) तारे किसी और तारे के विस्फोट के बाद बची हुई उसकी धुरी हुआ करते हैं और बहुत लंबा जीते हैं।

एक मीटर लंबाई, चौड़ाई और ऊंचाई वाले बक्से में 20 लाख जवान भारतीय हाथियों जितना या इससे भी ज्यादा वजन पूरे ब्रह्मांड में वाइट ड्वार्फ नाम की इस अजूबा जगह पर ही पाया जाता है। और 50 करोड़ डिग्री तापमान के बारे में तो सोचना भी सिरदर्द को न्यौता देने जैसा है। हमारे निकट ब्रह्मांड में सबसे ऊंचा तापमान सूरज के कोर का है, जो डेढ़ करोड़ डिग्री के आसपास पहुंचता है। वाइट ड्वार्फ तारों का 1-ए सुपरनोवा की गति को प्राप्त होना एक मानक चमक पैदा करता है, जिसके रंग में आए बदलाव से वैज्ञानिकों को न सिर्फ अरबों प्रकाश वर्ष दूर तक झांकने बल्कि डॉपलर प्रभाव के जरिए उसकी गति नापने का भी मौका मिलता है।

जैसे अंधियारी रात में जुगनुओं को देखकर हम अंदाजा लगाते हैं कि वे कितनी दूर चमक रहे हैं, उससे कहीं बेहतर भूमिका अपनी सुपरिभाषित रोशनी के चलते अंतरिक्ष में 1-ए सुपरनोवा निभाती है। इन मानक मशालों के प्रेक्षण के आधार पर वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अब से कोई छह अरब साल पहले तक (मोटे तौर पर सूरज की पैदाइश के थोड़ा पहले) ब्रह्मांड में डार्क एनर्जी का कोई प्रभाव नहीं था। बिग बैंग को तब तक सात-आठ अरब साल बीत चुके थे और ब्रह्मांड के फैलाव की गति स्थिर होने के क्रम में मंद पड़ने की तरफ बढ़ रही थी। फिर पता नहीं कैसे अचानक यह बहुत तेजी से फैलना शुरू हो गया और इसके फैलने की रफ्तार दिनोंदिन तेज से तेजतर होती चली गई।

वैज्ञानिक अभी तक सृष्टि के प्रारंभ बिंदु से लेकर वर्तमान तक और संभवत: भविष्य में भी विज्ञान के नियमों को एक समान मानते आए हैं। लेकिन अभी उनके सामने चुनौती न सिर्फ ब्रह्मांड रचना के नियम खोजने की है, बल्कि उन्हीं नियमों में कोई ऐसी गुंजाइश भी ढूंढ निकालने की है, जो बीच रास्ते में ही डार्क एनर्जी जैसे आश्चर्य को जन्म दे सके।

चीज क्या है

डार्क मैटर पर वापस लौटें तो मामला सिर्फ उसके न

दिखने का नहीं है। बहुत सारी चीजें हमारी प्रेक्षण की सीमाओं के चलते नजर नहीं आतीं। सूरज के अलावा बाकी तारों के भी ग्रह होते हैं या नहीं, तीस साल पहले तक यह हम नहीं जानते थे, क्योंकि तारों की तरह ग्रह प्रकाश नहीं छोड़ते। वे सिर्फ थोड़ा सा प्रकाश परावर्तित करते हैं जो उनके तारे की चमक में खो जाता है। ब्लैक होल को सिद्धांतत: नहीं देखा जा सकता क्योंकि वह न तो प्रकाश छोड़ता है, न ही परावर्तित करता है। प्रकाश किरणों को अपनी तरफ झुकाने की प्रवृत्ति के चलते ग्रैविटेशनल लेंसिंग उनकी शिनाख्त का जरिया बनती है और उनके चौगिर्द घूमने वाली तप्त गैसों का चित्र लेकर पिछले कुछ वर्षों में दो ब्लैक होलों की छाया भी देख ली गई है।

लेकिन डार्क मैटर का तो प्रकाश के साथ कोई लेना-देना ही नहीं है। वह न तो इसे छोड़ता है, न परावर्तित करता है, न इसकी दिशा मोड़ता है और न ही इसे सोखता है। ऐसे में उसके बारे में अटकलबाजी के अलावा इतना ही किया जा सकता है कि ग्रैविटेशनल मैपिंग से उसके ढूहों का नक्शा बना लिया जाए। बहरहाल, इससे डार्क मैटर का महत्व रत्ती भर भी कम नहीं होता। ब्रह्मांड के नक्शे में गैलेक्सियों के झुंड (क्लस्टर) बेतरतीबी से नहीं बिखरे हुए हैं। समय के आरपार फैले मकड़ी के थ्री-डाइमेंशनल जाले जैसी उसकी स्पष्ट संरचना यहां दिखाई पड़ती है। डार्क मैटर की भूमिका इस ब्रह्मांडीय संरचना की नींव या इसके कंकाल जैसी है।

बिग बैंग के ठीक बाद जब ब्रह्मांड में सिर्फ ऊर्जा रही होगी और पदार्थ अपनी बिल्कुल शुरुआती अवस्था में रहा होगा, तब उसका किसी ढांचे में बंधना शायद ही संभव होता, क्योंकि हर तरफ ऊर्जा की भरमार उसे सेटल ही नहीं होने देती। डार्क मैटर का ग्रैविटी के अलावा और किसी भी मूलभूत बल से कोई लेना-देना अबतक नहीं पाया गया है। लिहाजा सृष्टि की सुबह में संभवत: उसी ने वह ढांचा मुहैया कराया होगा, जिस पर धीरे-धीरे ब्रह्मांड की पूरी इमारत खड़ी हुई।

ऐसे में विज्ञान के लिए यह सवाल अभी अपने आप सबसे बड़ा हो जाता है कि इस डार्क मैटर की बनावट क्या है। इसके लिए अगर कण भौतिकी के स्टैंडर्ड मॉडल में कुछ गुंजाइश बनती है तो शायद डार्क एनर्जी पर भी इससे कुछ रोशनी पड़ सके।

(''विज्ञान की नई सदी : भविष्य की खिड़कियां'' से एक अंश प्रकाशक: अनबाउंड स्क्रिप्ट, दिल्ली)

ऐ जिंदगी ईनाम दे

-आरिफ खान मेवाती

ऐ जिंदगी ईनाम दे
खुशियां तमाम दे
आने का उनका पयाम दे
मुझे मुख्तसर सा कयाम दे
ऐ जिंदगी ईनाम दे
मेरे दर्द को तू बाँट ले
मेरी ख्वाहिशों को थाम ले
मुझे खुशहाली की झलक मिले
मेरी मेहनतों का दाम दे
ऐ जिंदगी ईनाम दे!

ऐ पथिक बन चलता रहा
मेरा हिजर से था वास्ता
अब तलब शामियाने की
मेरे सफर को तू लगाम दे
ऐ जिंदगी ईनाम दे!

मैं मुश्किलों से डरा नहीं
मैं सत्य पथ पर अड़िग रहा
हलाल पर मैं मर मिटूँ
कर दूजे का हक हराम दे
ऐ जिंदगी ईनाम दे!

ना ज दमीर ही जिंदा रहे
जो हराम से ना बच सकूँ
मेरी नियत पर कोई सवाल हो
ना कोई ऐसा ख्याल ऐ खाम दे
ऐ जिंदगी ईनाम दे!

पृष्ठ 8 का शेष

प्रक्रिया को समझना, ग्रहों के बारे में, उनकी गति के नियमों के बारे में भी जानना बेहद ज़रूरी तो है ही, साथ ही साथ बहुत चौंकाने और कौतूहल पैदा करने वाला है।

(स्रोत: बाल पत्रिका ''कोंपल'')

एडवर्ड जेन्नर

– फिलिप केन

छः करोड़ आदमी, अर्थात्–लन्दन, न्यूयार्क, टोकियो, शंघाई और मास्को की कुल आबादी का दुगुना। अनुमान किया जाता है कि 1700 और 1800 के बीच यूरोप में 6,00,00,000 लोग चेचक से मारे गए थे।

1721 की महामारी में बोस्टन की आधी आबादी चेचक–ग्रस्त थी, और इनमें हर 10 रोगियों में एक की मृत्यु भी हुई। किन्तु आज वह विभीषिका दुनिया से ही प्रायः उठ चुकी है। विभीषका का उन्मूलन टीके की नई ईजाद द्वारा ही सम्भव हो सका था, और इसका प्रवर्तक था–डाक्टर एडवर्ड जेन्नर।



जेन्नर का जन्म इंग्लैंड के ग्लोस्टरशायर कस्बे में 17 मई, 1749 को हुआ था। पादरी पिता ने प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए बालक को स्थानीय पाठशालाओं में भेजा। बचपन से ही जेन्नर की प्रवृत्ति प्राणिशास्त्र में कुछ थी और उसने चिकित्सा–शास्त्र का विधिवत् अध्ययन भी शुरू कर दिया था। डाक्टर बनने का एक तरीका उन दिनों यह था कि किसी और डाक्टर की शागिर्दी कर लो–और जेन्नर भी शल्यविद् डेनिएल लुडलों के यहां एप्रेण्टिस लग गए। 21 साल की उम्र में जेन्नर लन्दन के सेण्ट जॉर्ज हास्पिटल में पहुँचा कि युग के महान सर्जन जान हण्टर की की छत्रछाया में आकर वह भी कुछ बन सके।

डाक्टर हण्टर में असीम कुतूहल भरा था, असीम उत्साह भरा था। वह ऐसा चिकित्सक था जिसकी इच्छा चीज़ों को खुद करके देखने में अधिक थी। उसने खुद को ही कितने परीक्षणों की आधारभूमि बनाया, जिसका नतीजा यह हुआ कि एक लाइलाज बीमारी उसे आ लगी और उनकी ज़िन्दगी छोटी कर गई। खैर, अपने में यदि उसने यह बीमारी भर ली, तो विद्यार्थियों में अपना यह जीवन–दर्शन ही अधिक भरा है कि 'हैरान क्यों होते हो, परीक्षण करके खुद देख क्यों नहीं लेते?'

जान हण्टर का जेन्नर के साथ पत्र–व्यवहार चलता रहता था, और वह जीवन–भर उसका मित्र एवं परामर्शदाता रहा। सेण्ट जॉर्ज के हास्पिटल से स्नातक हो चुकने पर हण्टर ने उसे गलोस्टरशायर वापस भेज दिया कि वहां जाकर प्रेक्टिस शुरू कर दे। उनका शायद ख्याल था कि गांव में पैदा हुआ जेन्नर शहर के तंग वातावरण में प्रसन्न नहीं रह सकेगा। किन्तु गांव में जाकर डाक्टरी करने के इस परामर्श के लिए दुनिया आज हण्टर की बहुत ऋणी है।

वैज्ञानिक चिकित्सा तथा आधुनिक चमत्कारी दवाओं के प्रयोग में आने से पूर्व आम विश्वास देसी 'टोटकों' में हुआ करता था। समझा जाता था कि कुछ पौधों में रोगों को दूर करने की कुछ खास ताकत होती है। डिजिटेलिस का प्रयोग हृदयरोग में बहुत पुराने समय से चला आता था यद्यपि खुद डाक्टरों को भी तब यह मालूम न था कि उसके इस प्रभाव का कारण क्या है। काई अथवा फफूदी का प्रयोग लोग पहले भी करते आए थे कि बीमारी और न फैलने पाए, यद्यपि फ्लैमिंग ने पेनिसलीन का आविष्कार बहुत बाद में आकर ही किया। आज भी कितनों ही का विश्वास है कि आवाज़ बैठ जाए तो कच्चा प्याज गले के दर्द को ठीक कर सकता है। कुछ हो, कच्चे प्याज में कीटाणुओं को नष्ट करने की ताकत सचमुच है।

वैज्ञानिक विश्लेषण के चिकित्सा–क्षेत्र में प्रवेश करने से पहले ऐसे ही कुछ और अंध–विश्वास लोक–प्रसिद्ध थे जिनमें एक यह भी था कि कुछ बीमारियां इन्सान को ज़िन्दगी में एक ही बार लगा करती हैं। आज के माता–पिता सन्तुष्ट हो जाते हैं कि उनकी बच्चों को जर्मन मीज़ल्स (खसरा) हो गया है; क्योंकि अधेड़ उम्र की किसी औरत को अगर यह बीमारी पकड़ बैठे तो उसके लिए यह एक मुसीबत ही बन जाए, किन्तु बच्चों पर इसका कोई खास असर नहीं होता। जिस लड़की को जर्मन खसरा एक बार हो गया सारी उम्र अब वह इसकी जिल्लत से मुक्त रहेगी।

यही चीज चेतक के बारे में भी लोक–विश्रुत थी कि एक बार चेचक से बच निकलने पर मरीज़ को फिर दोबारा चेचक नहीं लग सकती। पूर्व के लोग इस विचार से फायदा

उठाने लगे–अपने जिस्म में जानबूझकर चेचक के कीटाणु को प्रवेश दे–देकर। उन्होंने तो एक ढंग भी निकाल लिया जिससे इन कीटाणुओं की ताकत कुछ कम हो जाए और अन्दर पहुँचकर ये कुछ ज्यादा नुक्सान न पहुंचा सकें चेचक का मामूली–सा एक आक्रमण, कुछ दिन बाद फिर स्वस्थ, और फिर बीमारी का उम्र–भर नाम नहीं। कई बार यह उपाय कुछ ज्यादा ही काम कर जाता, कितने ही शख्स इंजेक्शन के बाद फिर भले–चंगे कभी न होते।

ग्लोस्टरशायर की भोली जनता जानती थी कि 'काउपॉक्स' या बड़ी माता के बीमार को चेचक नहीं लगती। 'माता' के नाम से ही स्पष्ट है कि यह बीमारी आम तौर पर गौओं से संक्रान्त होकर ही मनुष्यों में आती है। लेकिन हैरानी तो यह थी कि एक ऐसी बीमारी, गौओं को जाकर क्यों चिपट जाती है जिसकी पैदाइश ही घोड़ों के सुमों में होती है।

बड़ी माता या शीतला और चेचक की इस अद्‌भुत स्थिति का अध्ययन डाक्टर जेन्नर ने शुरू किया। वृद्ध आचार्य हण्टर ने उसे प्रोत्साहित किया, ''अनुसन्धान करो, किन्तु धैर्य के साथ, और किसी भी पार्श्व की उपेक्षा कभी न करते हुए।'' –और, किसी भी वैज्ञानिक अनुसन्धान में, एक निर्देश–सूत्र और क्या हो सकता है? कुल मिलाकर जेन्नर ने 27 मरीजों पर परीक्षण किया। 1796 में उसने अपने निष्कर्षों को प्रकाशित कर दिया।

जेन्नर ने हर बीमार का क्रमिक 'इतिहास' तैयार किया और पाया कि, शुरू–शुरू की परीक्षाओं में, शीतला के रोगियों को चेचक नहीं लगती, हालांकि चेचक के मरीज उनके सम्पर्क में नित्यप्रति आते हैं। यही नहीं, चेचक के कुछ कीटाक्त द्रवों को उसने इन लोगों की बांहों में इंजेक्ट करके भी देखा कि इन्हें चेचक होता है या नहीं।

और अन्त में – हमें बच्चे के मां–बाप की हिम्मत की दाद देनी चाहिए – डाक्टर जेन्नर ने एक आठ साल के तन्दुरुस्त बच्चे जिम्मी फिप्स को 'माता' का टीका लगाया और उसे तन्दुरुस्त से बीमार कर दिया। इसके बाद उसने चेचक का टीका उसे, और एक ऐसे शख्स को भी लगाया जिसे 'माता' नहीं थी। चेचक निकली – 'माता' की लानत से मुक्त तन्दुरुस्त आदमी में, 'माता' के कीटाणुओं से 'सुभग' फिप्स में नहीं।

जेन्नर ने जब अपने इन निष्कर्षों को प्रकाशित किया, स्वभावतः एक तूफान ही उठ खड़ा होना था। कुछ ने तो यह कहा कि यह प्रकृति के नियमों का 'उल्लंघन' किया जा रहा है, जबकि कुछ और ने दावे पेश किए कि यह खोज उनकी थी, और कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने चेचक की इस कहानी को ठीक तरह से समझे बगैर परीक्षण भी शुरू कर दिए और, इसी घपले में, बीमारों को तन्दुरुस्ती तो क्या देनी थी–मौत बख्श दी!

उत्तेजना का यह दौर आया और चला भी गया, और तब जेन्नर ने अपने तरीकों को चिकित्सा–जगत् के सम्मुख सिद्ध कर दिखाया, जिसके श्रेयस्वरूप अब सम्पूर्ण सभ्य विश्व से उसे सम्मान और आदर मिलने लगा। पार्लियामेंट ने उसके लिए नाइटहुड की सिफारिश की और 20,000 पौंड इनाम दिलवाया। ऑक्सफोर्ड ने उसे एक ऑनरेरी डिग्री दी। रूस के ज़ार ने उसे एक सोने की अंगूठी भेजी। फ्रांस के नेपोलियन ने खुले दिल से उसकी प्रशंसा की। और अमेरिका से इण्डियनों का एक प्रतिनिधिमण्डल उसके लिए उपहार और धन्यवाद के संदेशों को लेकर इंग्लैंड पहुँचा।

इस व्यक्ति ने गंवारों के एक पुराने अंधविश्वास का अध्ययन किया और सिद्ध कर दिखाया कि उसमें वैज्ञानिक तथ्य था। साथ ही उसमें यह साहस भी था कि एक मामूली बीमारी को, इंजेक्शन के ज़रिये, अन्दर पहुँचाकर इन्सान को एक भारी जिल्लत से बचाया जा सकता है। दिल से वह एक देसी हकीम ही था और, यह महान् आदर–सम्मान प्राप्त करके, वह पुनः अपने ही गाँव में लौट आया और अपनी जिन्दगी के आखिरी साल उसने अपने खेतों पर ही गुजारे। जनवरी 1823 में उसकी मृत्यु हो गई।

अब कभी बांह पर लगे टीके का निशान जब आपके सामने आए, कुछ उन अज्ञात व्यक्तियों का भी ख्याल कर लिया करें जिन्होंने कभी इन्हीं परीक्षणों के लिए खुद को पेश किया था। और एडवर्ड जेन्नर का भी ख्याल कर लिया करें। जिसने टीके का आविष्कार करके हम सबको चेचक से हमेशा के लिए हिफाज़त दिला दी।

और उन सभी किस्म के टीकों का ख्याल भी कर लिया करें। जो हमारे स्वास्थ्य के अभिरक्षक हैं, प्रहरी हैं – जिनमें डाक्टर योनास साल्क का निकाला पोलियो से महफूज रखने वाला एक टीका भी है।

(स्रोत : किताब ''विश्व के महान वैज्ञानिक'')

आत्माओं की वापसी

– सं. राकेश नाथ

समाचारपत्रों में कभी कभी समाचार होता है कि अमुक व्यक्ति के घर में किसी दूसरे व्यक्ति की आत्मा ने जन्म लिया है। नया जन्मा व्यक्ति जो बातें कहता है, उनके साथ–साथ वह अपने पुराने जन्म की बातें भी बताता चलता है। एक समाचार–पत्र में समाचार आया कि मार्च, 2020 की बात है, रसूलपुर (जिला मुजफ्फरनगर) में जसवीर नामक तीन वर्ष का बच्चा मर गया। कुछ घंटों पश्चात् बहेड़ी गांव के शंकर त्यागी की आत्मा उस में प्रवेश कर गई और वह जीवित हो गया। कहते हैं कि जसवीर ने शंकर त्यागी (जिस की आत्मा का उस की देह में प्रवेश बताया गया) के घर और घरवालों को पहचान लिया।

चमत्कारों का तमाशा

लोग बाजीगर का तमाशा देखते हैं और अजीब अजीब काम होते हुए नजर आते हैं। लड़के की गरदन कट जाती है, फिर जुड़ जाती है। लड़की को एक बक्स में बंद कर दिया जाता है और चारों तरफ से लंबी लंबी तलवारें बक्स के आरपार झोंक दी जाती हैं। लेकिन लड़की का बाल भी बांका नहीं होता।

यह सभी जानते हैं कि बाजीगर जो दृश्य प्रस्तुत करता है, वह सत्य नहीं होता। उस का कमाल यही है कि वह अच्छे–अच्छे बुद्धिमान दर्शकों की आंखों और कानों को धोखा देने में सफल हो जाता है।

यदि यह निश्चित न होता कि खेल दिखाने वाला केवल बाजीगर है तो इसे भी ईश्वरीय चमत्कार या योग की करामात कहा जाता। कुछ ऐसी ही बात आत्माओं के पुनर्जन्म के दृष्टांतों के विषय में भी कही जा सकती है। एक गिरोह जनता को बाजीगर के समान बहकाने में सफल हो जाता है। किसी भी घटना पर वह श्रद्धा और चमत्कार का मुलम्मा चढ़ा कर उसे धार्मिक रंग दे देता है।

झूठ का लाभ

प्रश्न यह उठता है कि मायावी तो अपना काम पैसे के लिए करता है। अन्य लोगों का झूठ बोलने में क्या हित है? उत्तर है कि कभी–कभी कुछ लाभ भी होता है। लोगों की जिज्ञासा उस व्यक्ति में बढ़ जाती है जिस में दूसरी आत्मा ने प्रवेश किया कहा जाता हो। जनता उस के 'दर्शनों' के लिए आती है, उस के नातेरिश्तेदार व मित्र आसपास विख्यात हो जाते हैं।

मनुष्य ख्याति चाहता है, यह उस का स्वभाव है। इसके लिए वह थोड़ा सा झूठ बोलने में तो क्या, हजारों लाखों रुपए खर्च करने में भी नहीं हिचकता। इस के अलावा अजीब व रोचक बात कहने की, सुनने की और देखने की मनुष्य मात्र में आकांक्षा रहती ही है। कहानी, काव्य, महाकाव्य, उपन्यास, नाटक आदि इसी आकांक्षा की देन हैं। बड़े–बड़े महाकाव्य, उपन्यास इस तरह लिखे जाते हैं जैसे वे ऐतिहासिक तथ्य हों। कभी–कभी कुछ सत्य होता भी है लेकिन उस में कला, कौतुक और रुचि अधिकतर कल्पना की देन होती है।

जब मनुष्य कविता में झूठ बोलता है तो वह काव्य कहलाता है और अतिशयोक्ति व कल्पना की उड़ान काव्य के सुंदर अंग होते हैं। झूठ सत्य से कहीं अधिक रुचिकर और अजीब होता है। वैसे साहित्य में बोले गए झूठ के लिए झूठ शब्द प्रयोग करना नग्न सत्य है।

इससे अशिष्टता और अभद्रता की गंध आती है। ऐसे स्थान पर इसे कल्पना. अतिशयोक्ति, उपमा आदि कहा जाता है। कहने का मतलब यह नहीं कि कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि झूठी बातें हैं और उन से घृणा करनी चाहिए। या मनुष्य जीवन में इनका कोई महत्त्व नहीं। कला और साहित्य निश्चित रूप से जीवन में अपना विशेष स्थान रखते हैं, उसे सरस और सुंदर बनाते हैं। लेकिन इन्हें इन के अपने रूप में ही ग्रहण किया जाए, इतिहास या शुद्ध सत्य से न मिलाया जाए क्योंकि ऐसा करने से भ्रांतियां फैलती हैं।

अपने विचारों की पुष्टि के लिए तरह–तरह की झूठी सच्ची घटनाएं बढ़ा चढ़ा कर कहने या लिखने की कला का विकास मनुष्य के विकास के साथ होता आया है। हमारी इसी रुचि के कारण '**पुनर्जन्म**' के दृष्टांत भी अक्सर तरह–तरह के रंगरूप में अपनी छटा दिखाते हैं।

कभी-कभी अल्पवयस्क शिशुओं को भयंकर कष्ट में तड़प-तड़प कर जान देते हुए देखा जाता है। ईश्वर ऐसी शक्ति का नाम कहा जाता है जिस में अन्य गुणों के साथ-साथ न्यायकारी होने का गुण भी माना जाता है। शारीरिक कष्ट, किए हुए पाप के कारण, ईश्वरीय दंड बताया गया है। लेकिन बच्चे ने तो कोई 'पाप' नहीं किया, फिर उसे दंड क्यों ? और कहते हैं 'ईश्वर' तो न्यायकारी है। अत: मां-बाप के 'पाप' के फलस्वरूप या अकारण बच्चे को दंड देना कहां का न्याय है? यह तो सरासर अन्याय है।

इन परस्पर विरोधी बातों का समन्वय वैदिक और बौद्ध धर्मों में पुनर्जन्म की मान्यता द्वारा किया गया और बात कुछ और बन गई। अब बच्चे के कष्ट का कारण उस के पुनर्जन्म के पाप हो गए।

मिथ्या प्रमाणों की खोज

लेकिन ईश्वर के तथाकथित विधान और पूर्वजन्म की बात में सच और झूठ के ठीक निर्णय की वैज्ञानिक युक्ति निकल न सकी। ये बातें धर्माचार्य ठीक मानें और इनका प्रमाण कोई न हो, यह स्थिति उन्हें पसंद न आई। इसलिए प्रमाणों को खोज निकालने का प्रयत्न किया गया। कुछ कथाएं बनाई गईं। लेकिन क्योंकि आज का बुद्धिमान मानव कोरी कहानियों को किसी प्राकृतिक रहस्य का प्रमाण मानने के लिए तैयार नहीं। इसलिए उसे संतुष्ट करने के लिए कुछ जीते जागते उदाहरण प्रस्तुत किए गए। लेकिन विश्लेषण से पता चलता है कि आत्मा के पुनर्जन्म को प्रमाणित करने में ये उदाहरण भी असमर्थ हैं।

रोचक घटनाओं को गढ़ कर फैलाने का कारण कुछ भी हो, तर्क की कसौटी पर तो इन की असत्यता प्रकट हो ही जाती है। पुनर्जन्म की प्रत्येक घटना में यह कहा जाता है कि 'अ' की आत्मा ने ब का शरीर धारण किया और 'ब' को 'अ' की सब बातें याद हैं। देख कर वह उस की वस्तुओं को पहचान भी लेता है। लेकिन न तो ऐसा संभव ही है, न यह आत्मा के आवागमन को सिद्ध ही करता है। कारण यह कि याद रखने का काम आत्मा का नहीं, मस्तिष्क का है। मस्तिष्क तो मरते समय शरीर में ही रह जाता है और नष्ट हो जाता है।

इस के अलावा पहले शरीर वाले की बातें नए शरीर वाले को कैसे याद रह सकती हैं? यदि किसी उदाहरण को विश्लेषण और विवाद के लिए सच भी मान लिया जाए तो भी कहा जा सकता है कि यह मस्तिष्क के आवागमन का दृष्टांत हुआ, आत्मा का नहीं।

कुछ दुराग्रही व्यक्ति यह कह सकते हैं कि आत्मा ही विचारने या देख और सुन कर याद रखने की शक्ति रखती है। इस दलील का खोखलापन पागल की दशा पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है। पागल की आत्मा ठीक होती है और वह जीवित भी होता है, लेकिन उस की सोचने समझने या याद रखने की शक्ति लुप्त हो जाती है या विकृत हो जाती है। ऐसी दशा में उस के मस्तिष्क की चिकित्सा की जाती है और तब अक्सर पागल ठीक भी हो जाता है।

आत्मा का बीमार होना या उसका इलाज किसी धर्म में नहीं बताया गया है। यदि आत्मा को रोग होता है या उस की मृत्यु हुई बताई जाती तो फिर उस के पुनर्जन्म का प्रश्न ही नहीं उठता। यह बखेड़ा कि आत्मा दूसरा जन्म लेती है या नहीं, खड़ा ही इसलिए हुआ कि आत्मा अमर बताई जाती है। कुछ इस के आवागमन में विश्वास करते हैं तो कुछ की रूहों को कयामत तक इंतजार करना पड़ता है। कयामत का दिन आएगा या नहीं, और आएगा तो कब आएगा, यह दूसरी बात है। यदि आत्मा का कार्य सोचने समझने का होता तो पागल की आत्मा की चिकित्सा होती उसके दिमाग की नहीं।

शल्य क्रिया द्वारा देह के प्रत्येक अंग को चीरफाड़ कर देखा जा सकता है। आज तक किसी शल्य क्रिया विशेषज्ञ ने आत्मा नाम का कोई अंग देह में नहीं देखा।

उपर्युक्त तर्कों से यह स्पष्ट है कि एक आत्मा के दूसरी देह में प्रवेश के चुटकुले कुछ भी हों, वे इस बात का प्रमाण कभी नहीं हैं कि आत्मा एक जगह से दूसरी जगह जन्म लेती है। ऐसी बातें असामान्य व अजीब होती हैं, अत: उन का रोचक होना स्वाभाविक ही है। लेकिन उन्हें सही मानना एकदम गलत और झूठ का शिकार होना है।

(स्रोत : किताब ''तर्क से काटिए अंधविश्वासों का जाल'')

अल्लाह और भगवान के नाम पर निरीह पशुओं की बलि बन्द हो

– डॉ. दिनेश मिश्र

किसी भी जीव को चाहे वह इंसान हो या जानवर जीवित रहने का मौलिक अधिकार है तथा किसी भी धार्मिक परम्परा या अनुष्ठान की आड़ में उसके प्राण लेने का अधिकार किसी को भी नहीं है। लेकिन पशु बलि ऐसी ही एक अंधविश्वास भरी परम्परा है जिसमें किसी भी पशु चाहे वह गाय, भैंस या बकरा/बकरी हो, इस उम्मीद से बलि दे दी जाती है कि उस पशु को अल्लाह/भगवान पर अर्पित करने से वे प्रसन्न हो जायेंगे तथा बलि चढ़ाने वाले की सारी इच्छाएं पूरी हो जायेगी। अपनी मृगतृष्णा की पूर्ति के लिए दूसरे जीव का जीवन हरण करने की यह प्रथा भी कितनी विचित्र है। अपने लाभ के लिए किसी दूसरे की जान लेकर उसके खून की धार बहाकर, उसके मांस के टुकड़ों को उदरस्थ कर क्या कोई धार्मिक क्रिया पूरी हो सकती है या 'ईश्वर' के किसी भी स्वरूप को प्रसन्न किया जा सकता है अथवा इच्छाएं पूर्ण की जा सकती है? या यह सिर्फ एक मृग मरीचिका है। क्या ऐसी क्रूरता जिसे कोई सहृदय इंसान भी नहीं पसंद कर सकता है तो भला दया के सागर माने जाने वाले ईश्वर कैसे स्वीकार करेंगे ? छत्तीसगढ़ के कुछ सामाजिक संगठनों के प्रयास से यह प्रथा वहा बंद हुई है, लेकिन कुछ स्थानों में यह आदि परम्परा के रूप में अब भी जारी है। जिसके संबंध में जागरूक नागरिकों को विचार करना चाहिए।

पशुबलि के संबंध में प्रत्यक्षदर्शियों से मिली जानकारी से आंखों में एक ऐसा वीभत्स दृश्य उभर जाता है जिसमें एक निरीह पशु चाहे वह भैंस, गाय या बकरी हो उसे खींचकर, धकेलकर ऐसे स्थान पर ले जाया जाता है जो कथित रूप से पवित्र है, धार्मिक है, 'प्राणरक्षक' स्थल है लेकिन इन पशुओं के लिए वह न ही धार्मिक और न ही प्राण रक्षक बल्कि प्राणघातक है। एक मासूम पशु को बलि वेदी पर ले जाकर उसे नहला धुलाकर साफ किया जाता है। मिठाई खिलाई जाती है तथा अगले ही पल धारदार हथियार से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया जाता है, उसके खून को 'देव' प्रतिमा पर बलि वेदी पर अर्पित किया जाता है। इस बर्बर हत्या को परम्परा का जामा पहनाकर पशु के शरीर को प्रसाद के रूप में वितरित कर दिया जाता है। खून, चीखें, गोश्त, गंडासा, तड़पता हुआ धड़ वीभत्स दृश्य प्रस्तुत करते हैं। उसी प्रकार बकरीद में भी प्रतिवर्ष लाखों निरीह पशुओं की जान चली जाती है पर धर्म यह बात दोहराता है कि हर जीव में ईश्वर का अंश है चाहे वह पशु हो या पक्षी या इंसान, ईश्वर की नजर में सब बराबर है, फिर भला अपने ही अंश को मारने से ईश्वर क्यों प्रसन्न होगा? अपने शरीर के किसी अंग को खत्म करने से बाकी शरीर कैसे खुश रह सकता है?

हिंसा मनुष्य का मूल स्वभाव नहीं है। आदि मानव असभ्य भले हो रहा हो लेकिन वह जंगल में रहते हुए भी पशुओं की वध सिर्फ दो ही कारणों से करता था। एक तो अपने बचाव के लिए तथा दूसरा अपनी भूख मिटाने के लिए वह भी तब जब उसके पास खाने पीने, भोजन के विकल्प नहीं थे। (यहां तक जंगली जानवर भी भूखे न रहने पर अन्य जानवरों का शिकार नहीं करते। लेकिन जब उसने पशुओं के साथ रहना सीख लिया, उन्हें पालने लगा, कृषि व्यवसाय, परिवहन, दूध वगैरह के लिए उपयोग करने लगा, तब उसने उन्हें अपना साथी मान लिया तथा उनका पालन व सुरक्षा भी करने लगा। लेकिन जैसे-जैसे वह सभ्य हुआ उसमें संग्रह की प्रवृत्ति बढ़ी, लोभ बढ़ा, विभिन्न प्रकार के कर्मकांड, उपासना पद्धतियां बनीं। प्राकृतिक आपदाओं, महामारियों, रोगों से प्राण रक्षा के लिए झाड़, फूंक, तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत की मान्यताएं टोने-टोटके पर विश्वास करने लगा। विभिन्न अनुष्ठानों व पशुबलि, नरबलि जैसी क्रूर परंपरायें बनीं। आज भी ग्रामीण अंचल में अनेक धार्मिक स्थलों में जन जातियों में विभिन्न कारणों से बलि की परम्परा विद्यमान है।

पशुबलि के कारणों में है-धार्मिक आस्था या अंधविश्वास, लोभ या स्वार्थ सिद्धि की कामना चाहे वह सिद्धि प्राप्त करने के लिए हो या गड़ा खजाना प्राप्त करने के लिए या औलाद प्राप्ति की आकांक्षा है। अनेक मामलों में तो मनौती पूरी करने के लिए पशुबलि दी जाती है, तो कभी बीमारियों को ठीक करने के लिए। कुछ लोग धार्मिक कारणों से पशुबलि को जायज ठहराते हैं, तो कुछ परम्परा का हवाला देते हैं। जबकि इस संबंध में कई धर्मों व धर्माचार्यों का मत स्पष्ट है। महावीर ने कहा है कि अहिंसा

परमो धर्मः। अहिंसा से बड़ा कोई धर्म नहीं है तो भला बलि जैसी हिंसक परम्परा कैसे धार्मिक हो सकती है? गौतम बुद्ध ने तो अनेक स्थानों पर अहिंसा पर ही जोर दिया है। उन्होंने कहा मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है। हिन्दुओं के पवित्र ग्रन्थ भागवत गीता के सत्रहवें अध्याय के चौथे श्लोक में ऐसी श्रद्धा व कार्य जिससे किसी दूसरे प्राणी को पीड़ा या नुकसान पहुंचे या उसकी जान चली जाये, तामसी श्रद्धा, अंधकार या अंधश्रद्धा कहा गया है। तथा यह भी कि ऐसी श्रद्धा से किसी का कल्याण नहीं होता तथा यह ईश्वर को स्वीकार नहीं है।

ग्रामीण अंचल में शिक्षा का उचित प्रचार-प्रसार नहीं होने से स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता नहीं पनप पायी है। ऐसे लोग बीमार पड़ने पर बैगा, गुनिया के पास जाते हैं जो सभी बीमारियों को टोने, नजर लगने के कारण बताकर उनसे बीमारी ठीक करने के लिए मुर्गे, बकरे, दारू की मांग करता है, बलि दे देता है। मनोरोग से पीड़ित मनुष्य को भूत-प्रेत, जिन्न पीड़ित बताकर बैगा, सिरहा लोग बीमार मनुष्य के शरीर से भूत उतारने के नाम पर पशुबलि करवाते हैं। गड़ा खजाना ढूंढने व बिना मेहनत के अमीर बन जाने की कामना भी पशुबलि का कारण है। कुछ समय पूर्व जशपुर के पास खजाने पाने के लोभ में बीस नख वाला कछुआ पाने व बलि देने के चक्कर में दो व्यक्तियों की मौत हो गई। तांत्रिक सिद्धि पाने के लिए मोर, भैंसा की बलि की घटनाएं भी प्रकाश में आती रहती हैं।

दक्षिण भारत में कुछ प्रसिद्ध धार्मिक-स्थल, कलकत्ता, कामाक्षा, बनारस सहित छत्तीसगढ़ में भी पशुबलि के अनेक स्थानों पर पशु बलि सामाजिक कार्यकर्ताओं के प्रयास से बंद हुई है लेकिन बस्तर, चाम्पा, चन्द्रपुर, तुरतुरिया, रायगढ़ सहित कुछ स्थानों पर अब भी परम्पराओं के निर्वाह के नाम पर जारी है। पशु बलि को रोकने के लिए दक्षिण भारत के कुछ राज्यों में जैसे राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ में, केन्द्रशासित प्रदेश पाण्डिचेरी में पशु बलि निषेधक कानून है लेकिन जन जागरण के अभाव के कारण प्रभावी नहीं हो पा रहे हैं। पं. मदन मोहन मालवीय ने तो कलकत्ता के काली मंदिर के सामने सभा लेकर पशु बलि को अधार्मिक व ग़ैर-जरूरी कृत्य कहा था। महात्मा गांधी ने भी कहा है कि हिंसा मिथ्या है, अहिंसा सत्य है। अहिंसा के बिना मनुष्य पशु से बदतर है। कहीं-कहीं पर लोग पशु बलि अनुष्ठान व तप का आवश्यक अंग मानते हैं पर गीता के सत्रहवें अध्याय के चौदहवें श्लोक में यह पुनः कहा गया है अहिंसा पवित्रता, सरलता ही श्रेष्ठ तप है जबकि व्यर्थ की हिंसा त्याज्य है। किसी भी प्रकार की हिंसा चाहे वह धर्म के नाम पर, परम्पराओं के नाम पर हो, अपनी स्वार्थसिद्धि के नाम पर ही हो, त्याग देना चाहिए। मनुष्य को बेकसूर पशु की बलि देने के बदले अपने अंदर की पशुता की बलि देना चाहिए। अपने लोभ का बलिदान करना चाहिए।

-अध्यक्ष अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति

तर्कशील सोसायटी हरियाणा का अधिवेशन सम्पन्न

तर्कशील सोसायटी हरियाणा का राज्य अधिवेशन 31 मार्च 2024 को डाक्टर ओम प्रकाश ग्रेवाल अध्ययन एंव शोध संस्थान कुरुक्षेत्र में सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता राज्य प्रधान फरियाद सिंह, महासचिव गुरमीत सिंह,कोषाध्यक्ष अनुपम सिंह एंव वरिष्ठ हिंदी लेखक अशोक भाटिया ने की। कार्यक्रम में मंच संचालन तर्कशील साथी बलजीत भारती ने किया। कार्यक्रम के प्रारम्भ में बिछुड़ चुके साथियों प्रा.बलवंत सिंह सम्पादक तर्कशील पथ पत्रिका, पदम् सिंह प्रधान तरावड़ी इकाई, टहल सिंह गिल, प्रधान इस्माईलाबाद इकाई एंव फिरा के पैटर्न यू. क्लानाथन के लिए दो मिंट मौन धारण कर शोक व्यक्त किया। सम्मेलन में तर्कशील गतिविधियों को कैसे बढ़ाया जाए इस विषय पर गहरा मंथन हुआ जिसमें गुरमीत सिंह, फरियाद सिंह, डाक्टर राजेश पेगा, डाक्टर परमानन्द, रामेश्वर आजाद, बलजीत भारती, पलविंदर सिंह, बलदेव सिंह म्हरोक ने अपने विचार रखे। सम्मेलन के अगले पड़ाव में आगामी दो वर्षों 1 अप्रैल 2024 से 31 मार्च 2026 तक के लिए राज्य कार्यकारिणी का चुनाव सम्पन्न हुआ। जिसके लिए अध्यक्षता वरिष्ठ तर्कशील साथी एंव नार्दन रेलवे मेन्स यूनियन के पूर्व मंडल सचिव सतपाल शर्मा ने की।

सम्मेलन में सर्व सम्मति से दो वर्षों (2024-26)के लिए निम्न पदाधिकारी चुने गए :

प्रधानः डॉ.राजेश पेगा

उप प्रधानः फरियाद सिंह

महासचिवः बलजीत भारती

उप महा सचिवः डॉ. परमानन्द

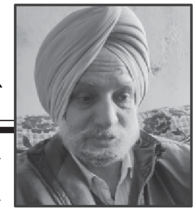
कोषाध्यक्षः अनुपम सिंह

प्रचार सचिवः सुभाष तितरम

तर्कशील पथ पत्रिका सम्पादक : गुरमीत अम्बाला

मैं तर्कशील कैसे बना ?

- प्रा. बलवन्त सिंह



प्रा. बलवंत सिंह 31 जनवरी 2024 को हमसे सदा के लिए विदा हो गए थे, लेकिन उनके विचार, कार्य सदा के लिए तर्कशील साथियों के बीच जीवित रहेंगे। तर्कज्योति पत्रिका जो विभिन्न पड़ावों के बीज गुजरती हुई अब तर्कशील पथ के रूप में छपती है, के जुलाई 1996 अंक में मास्टर जी ने अपने तर्कशील बनने की गाथा संक्षेप में लिखी थी, जिसे जानकारी हित इस अंक में प्रकाशित किया जा रहा है।

मेरा जन्म सिख परिवार में हुआ। परिवार एवं समाज से मिले संस्कारों के कारण बचपन में मैं पूरा आस्तिक था। किशोरावस्था में मैं गुरबाणी का नियमित रूप में पाठ किया करता था। बचपन से ही मैं बड़े बुजुर्गों के मुख से सुना था कि कई लाखों वर्षों से कलियुग चल रहा है तथा अभी और लाखों वर्षों तक यह चलेगा। इससे पूर्व लाखों वर्षों के सतयुग, त्रेता, द्वापर युग बीत चुके हैं। परन्तु विद्यालय में जब इतिहास एवं भूगोल की पुस्तकों में पढ़ता कि भारत की सब से प्राचीन सभ्यता सिन्धु घाटी सभ्यता लगभग चार पांच हजार वर्ष पुरानी है, रामायण तथा महाभारत का काल लगभग दो हजार वर्ष पुराना है, जबकि भारत में हड़प्पा संस्कृति से पूर्व कोई विकसित संस्कृति यों ही नहीं, तो यह लाखों वर्षों के कथित सतयुग, त्रेता एवं द्वापर युग किस समय में बीते थे ?

पाठ्य पुस्तकें कुछ और कहती थीं तथा बुजुर्ग कुछ और कहते थे। यह सब पढ़ सुन कर मेरे लिए यह निर्णय करना मुश्किल हो जाता कि इन दोनों बातों में से कौन सी सत्य है? जब ये प्रश्न अपने अध्यापकों से पूछता तो वे मुझे थोड़ा झिड़क कर चुप करवा देते। जब यह प्रश्न में गांव में बुजुर्गों से करता, तो वे खिसिया कर कह देते कि यह पढ़ाई तो इस का दिमाग खराब कर देगी। सही उत्तर न मिल पाने के कारण ये प्रश्न मेरे दिमाग को हमेशा कचोटते रहते।

तब मेरी आयु केवल 14-15 वर्ष की थी, जब हमारी बड़ी बहन का देहान्त हो गया। मेरी बहन अत्याधिक बीमार रहती थी। बीमारी की हालत में भी वह घरेलू कार्य में जुटी रहती थी। पूरा आराम तथा परहेज न करने के कारण उसकी हालत और बिगड़ती गई। डाक्टरी इलाज करवाने के बावजूद भी उसका स्वास्थ्य ओर बिगड़ रहा था। ऐसे में घर वालों ने पुच्छा देने वालों तथा चौकी लगाने वालों के पास भी फरियाद की। तथाकथित स्यानों ने घर वालों को और भी भ्रम में डाल दिया कि इस पर तो किसी ने कुछ करवाया हुआ है। कभी डॉक्टरों के तथा कभी तथाकथित स्थानों के चक्कर लगाते हुए हमारी बहन सदा की नींद सो गई। उसके बच्चे सभी छोटे ही थे, सबसे छोटी लड़की तो केवल छः मास की ही थी।

तथाकथित स्यानों ने हमारे घर बालों के मन में भ्रम तो डाल ही दिया था। अतः वे 8-10 वर्षीय बच्चे को साथ ले कर एक पुच्छां देने वाले के पास गए। उसने बच्चे के नाखून पर तेल लगा कर दिखा दिया कि हमारी बहन की मृत्यु हमारी ताई द्वारा किये गए जादू-टोने के प्रभाव से हुई है।

छोटी-छोटी बातों को लेकर हमारी मां तथा ताई के आपसी सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। अन्धविश्वासी संस्कारों में पले होने के कारण हमारी ताई छोटी-छोटी समस्याओं के हल के लिए तथाकथित स्यानों की शरण में प्रायः जाया करती थी। इसी बात को लेकर हमारी मां को सन्देह था कि वह हमारे ऊपर कोई जादू-टोना करवाती रहती है। यही सन्देह की बातें उस बच्चे के सामने भी की जाती थी। इसी सन्देह के कारण जब पुच्छां देने वाले ने उसके नाखुन को तेल लगाकर उसमें देखते रहने को कहा तो उसके अवचेतन मन में हमारी ताई की आकृति ही उभर आई जो कि उसे अपने नाखून में चलती फिरती दिखाई देने लगी।

एक बार मैं बीमार हो गया। दवाई लेने से ठीक हो गया परन्तु एक मास बाद फिर से बीमार हो गया। ऐसा 5-6 महीने चलता रहा। ऐसे में मुझे एक व्यक्ति मिला, जो कि अपने आप को किसी महात्मा से वरदान प्राप्त मानता था। उसने मुझसे पांच रुपए लिए तथा कह दिया कि 'अ' अक्षर से शुरू होने वाले नाम के मेरे किसी मित्र ने मुझे दूध में कुछ पिला दिया है। इसी कारण से मैं हर महीने बीमार हो जाता हूं। उसने मुझे एक धागा दे दिया और कहा कि अब के बाद बुखार नहीं आएगा। परन्तु अगले महीने मैं फिर बीमार हो

गया। मैंने अस्पताल में जा कर अपना खून टेस्ट करवाया। वहां से मिली दवाई का पूरा कोर्स करने के पश्चात् मुझे कभी बुखार नहीं हुआ।

कालेज में प्रवेश लेकर मैंने इस तरह के अनेक प्रश्नों के उत्तर ढूंढने के लिए अपनी पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ अन्य पुस्तकों का भी अध्ययन किया। परन्तु सही मार्गदर्शक न मिल पाने के कारण वैज्ञानिक चेतना की पुस्तकें मुझ से दूर ही रही। जो अध्ययन मैंने किया उससे मेरा मन पूरी तरह से सन्तुष्ट नहीं हो सका, क्योंकि अधिकतर पुस्तकों में विरोधाभास ही होता था।

आज के दौर में बेरोजगारी तथा आर्थिक समस्याएँ मनुष्य के दृढ़ संकल्प को भी चूर-चूर कर सकती है। बी.ए. करने के बाद जब मैं बेरोज़गार था, तो मुझे कई उतार-चढ़ाव देखने पड़े। कई जगह इन्टरव्यू दिये परन्तु बात नहीं बनी। एक बार हमारे घर एक साधू आ गया। वह मुझे कहने लगा कि ''बच्चा तू बहुत किस्मत वाला है। तू दिल का बहुत सच्चा है। तू किसी का बुरा नहीं करता परन्तु तेरे दोस्त तुझे धोखा दे जाते हैं। तेरी अब किस्मत खुलने वाली है। तू बाहर जाएगा, कारों पर घूमा करेगा।'' मैं उत्सुकतावश पूछ बैठा कि मैं अभी बेरोजगार हूं, मुझे नौकरी कब तक मिल जाएगी। उस पर वह कहने लगा, आज कल तेरी ग्रह दशा ठीक नहीं चल रही, शनि रास्ते में रुकावट डाल रहा है। इसे ठीक करने का उपाय करना पड़ेगा। मैं तुझे एक तावीज दूँगा, फिर तुझे हर कार्य में सफलता मिलेगी। उपाय की दक्षिणा के तौर पर उसने एक बोरी गेहूँ का दान मांगा। मैंने उसे एक कनस्तर गेहूँ का लाकर दे दिया। परन्तु इतना गेहूँ वह लेने के लिए तैयार नहीं था। मैं अपने घर वालों से भी डरता था कि यदि मैंने एक बोरी गेहूं उसे दे दी तो वे क्रोधित होंगे। अतः मैंने कह दिया कि यदि इतने में काम चलता है तो चलाओ वर्ना चले जाओ। काबू आई मुर्गी को वह भी छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। अब वह आधी बोरी पर आ गया। इतने में मेरा बड़ा भाई बाहर से आ गया। उसने जब यह मामला देखा तो उसने वह गेहूं भी उठा कर रख ली और कह दिया कि हम बिल्कुल भी गेहूं नहीं देंगे। यह देखकर वह साधू कहने लगा कि यही एक कनस्तर गेहूं ही दे दो, इतने में ही मैं उपाय कर दूँगा। इतने में मेरा भी हौंसला बढ़ गया कि पहले तो वह बोरी से एक सेर भी कम की बात नहीं कर रहा था, अब कनस्तर के लिए ही गिड़गिड़ा रहा है। अतः हमने यह गेहूं उठाकर अन्दर रख दी तथा उसे चले जाने को कह दिया। जाते-जाते वह एक सेर आटे के लिए ही गिड़गिड़ाने लगा।

इस घटना का मेरे दिमाग पर काफी प्रभाव पड़ा। मुझे आत्मग्लानि हो रही थी कि यदि मैं थोड़ा सा ओर डर जाता तो वह मुझ से एक बोरी गेहूँ अवश्य ठग कर ले जाता।

हमारे चचेरे भाई की शादी के 7-8 वर्ष बाद उनके घर लड़का पैदा हुआ। शादी के बाद ही उन्होंने सन्तान प्राप्ति के लिए अनेक गुरुद्वारों, मन्दिरों, खानगाहों में भटकना शुरू कर दिया था। वे कई पीरों की मजार पर गए। कई बाबाओं के पास चौंकियां भरते रहे। अनेक पंड़ितों को भी खूब दान-दक्षिणा दी। अन्त में बराड़ा के पास बुड़िया गांव के एक सन्त के पास गए। वहां वे लम्बे समय तक चौंकियां भरते रहे। संयोगवश इसी दौरान उनके घर लड़का पैदा हो गया। इसे उन्होंने उसी सन्त की कृपा-दृष्टि मान लिया और जी-जान से उसकी सेवा करने लगे। साथ-ही-साथ रिश्तेदारों एवं अन्य जानकारों में खूब प्रचार करने लगे।

मेरे एक भान्जे के पेट में दर्द रहता था। उस सन्त की ख्याति सुन कर मेरी मां ने मुझे भान्जे को साथ लेकर बुड़िया गांव में उस सन्त के पास जाने के लिए कहा और साथ यह भी कह दिया कि सन्त जी से अपनी नौकरी के बारे में भी पूछ लेना। मेरी माँ का विचार था कि यदि सन्त जी की कृपा हो गई तो मुझे नौकरी अवश्य मिल जायेगी।

वहां जा कर जो दृश्य मैंने देखा उसे देख कर ऐसे सन्तों के प्रति मेरे मन में घृणा पैदा हो गई। पहले तो काफी देर तक उसके सेवक लोगों को बताते रहे कि सन्त जी आराम कर रहे हैं, अतः थोड़ा इन्तज़ार करो। वहां पर चाय व लंगर का प्रबन्ध था, जो कि सभी श्रद्धालु खा पी रहे थे। और चढ़ावा भी खूब चढ़ा रहे थे। अन्त में सन्त जी लोगों के दुखों का निवारण करने के लिए कमरे से बाहर आ कर एक आराम कुर्सी पर बैठ गए, साथ ही चार नवयुवतियां भी आईं जो कि संत जी की टांगें व बाजू दबा रही थीं। श्रद्धालु बारी-बारी आ कर उसके पैरों पर माथा टेकते। संत जो आशीर्वाद के साथ उन्हें राख (भभूति) की एक पुड़िया दे देते। भभूति ही वहां पर बिमारी की दवा थी, तथा लोग भभूति को पाकर आनन्द विभोर हो रहे थे, मानों उन्हें कोई खज़ाना मिल गया हो। मेरे भान्जे को भी सन्त जी ने एक पुड़िया दे दी तथा उसे पेट पर मलने तथा खाने के लिए कह दिया।

अन्त में मेरी बारी आई। मैंने उनके आगे माथा तो नहीं टेका, परन्तु हाथ जोड़ कर पास बैठ गया। उसने मुझे मेरी समस्या के बारे में पूछा, मैंने नौकरी न मिलने की समस्या बता दी। उसने मुझे भी एक राख की पुड़िया दे दी और कह दिया कि इसे रोजाना माथे पर लगा लिया कर, नौकरी जल्दी मिल जाएगी। कब मिलेगी? किस विभाग में मिलेगी? इसके बारे में कुछ नहीं बताया। घर आकर वह राख को अपने पेट पर मलता भी रहा और खाता भी रहा, किन्तु आराम बिल्कुल नहीं आया। उसके पेट में पथरी थी जो कि बाद में डॉक्टरी इलाज से ठीक हुई।

बेरोजगारी के दौर में ही मेरी शादी हो गई। शादी के कुछ दिन बाद मैं अपनी ससुराल गया। वहां हम चाय-पानी करके बैठे ही थे कि एक ज्योतिष आ गया। मेरे ससुराल में वह पहले भी आया करता था। मेरे ससुराल वाले कहने लगे कि यह पंड़ित बिल्कुल सच्ची बातें बताता है, अतः उन्होंने मुझे भी अपना हाथ दिखाने के लिए बाध्य कर दिया। मेरा हाथ देखकर उसने पहले तो मेरी प्रशंसा की कि यह तो दिल का बड़ा साफ है, दीन-दुखियों की सेवा करने वाला है, यह सभी की भलाई चाहता है परन्तु इसके मित्र धोखा दे जाते हैं, आदि..... परन्तु मैंने बीच में टोक कर पूछ लिया कि मेरी नौकरी कब लगेगी? यह बताने के लिए उसने 51 रु. मांग लिए। मेरी जेब में लगभग 100 रु. ही थे। यदि मैं पंडित को पैसे नहीं देता तो ससुराल में बना बनाया सम्मान खत्म हो जाएगा और यदि मैं उसे रुपये दे देता हूं तो मेरी जेब खाली हो जायेगी। 'लाख जाए पर साख न जाए' की कहावत के अनुसार मैंने उस ज्योतिषि को 51 रु. दे दिए। उसने एक धागे को कुछ गांठें लगाईं और मुझे थमा दिया और कहने लगा कि प्रयत्न जारी रखो, कुछ दिनों में ही तुझे नौकरी मिल जाएगी।

इस घटना के एक वर्ष बाद नारायणगढ़ में पंजाबी ओ.टी. की ट्रेनिंग खुली। मेरे एक मित्र ने मुझे सलाह दी कि ज्ञानी करके ओ.टी. में दाखिला ले लो, हरियाणा के स्कूलों में पंजाबी अध्यापक के पद बहुत खाली है। अतः मैंने ज्ञानी पास करके ओ.टी. में दाखिला ले लिया। ओ.टी. करते ही मेरी नियुक्ति रा. उ. वि. दूधला मोरथला (कुरूक्षेत्र) में पंजाबी अध्यापक के पद पर हो गई। यदि मैं अपने मित्र की सलाह पर ओ.टी. पंजाबी न करता तो पता नहीं कब तक बेरोज़गार भटकता रहता।

अध्यापक लगने के बाद हम अपने एक मित्र अध्यापक की शादी में नंगल के पास एक गांव में गए। वहां से वापिस आते हुए मैं तथा मेरा एक अन्य मित्र अध्यापक सलविन्द्र सिंह चण्डीगढ़ में रात को ठहरे। जिसके पास ठहरे थे वह ज्योतिषियों का अच्छा सेवक था। वह हमें भी अपने गांव ज्योतिषि के पास ले गया। सलविन्द्र सिंह ने अपना हाथ दिखाया तथा अपनी शादी के बारे में पूछा। सलविन्द्र सिंह की दिली-तमन्ना नौकरी पेशा पत्नी पाने की थी इसी विषय में उसने ज्योतिषि से पूछा कि उसे नौकरी पेशा पतनी मिलेगी अथवा नहीं? ज्योतिषि ने दो टूक उत्तर दिया कि उसे एम.ए. पास पत्नी तो मिल सकती है परन्तु वह नौकरी एक भी नहीं कर सकेगी, क्योंकि उनकी हाथ की रेखाओं में पत्नी की नौकरी का योग नहीं है।

परन्तु मजेदार बात यह है कि मेरे उस मित्र की पत्नी एक जे.बी.टी. अध्यापिका है और पिछले 7-8 वर्षों से वह नौकरी कर रही है।

मुझे तर्कशील बनाने में ओ. टी. के मेरे सहपाठी मित्र परमजीत का विशेष योगदान रहा है। परमजीत मानसा का रहने वाला था और वामपन्थी विचारधारा का समर्थक था। उसने मुझे अनेक पुस्तकें पढ़ने के लिए दी, जिसमें गोर्की का उपन्यास 'मां', भगत सिंह की पुस्तक 'मैं नास्तिक क्यों', जसवन्त सिंह कंवल का उपन्यास 'लहू दी लो' इत्यादि थी। इन पुस्तकों में से मुझे 'मैं नास्तिक क्यों' ने विशेष तौर पर प्रभावित किया। इस पुस्तक को पढ़कर ईश्वर के बारे में पड़े संस्कार तो माफ हो गए परन्तु कई प्रश्न अभी भी दिमाग में उठते थे, जैसे कि किसी के घर में ईंट पत्थर अचानक कैसे गिर जाते हैं? बन्द तालों में रखे कपड़े क्यों फट अथवा सड़ जाते हैं? कसरों से पीड़ित व्यक्ति चौकियों पर जा कर कूदना क्यों शुरू कर देते हैं? जादू टोने से किसी का लाभ अथवा हानि कैसे हो जाती है? कइयों में इतनी शक्ति कहां से आ जाती है कि बीस-बीस व्यक्ति भी उसे काबू में नहीं रख पाते? आदि

अध्यापक बनने के पश्चात् में एक बार जालन्धर गया। वहां से मैंने कुछ पुस्तकें खरीदीं जिनमें 'और देव पुरुष हार गये' भी थी। पुस्तकों वाले ने इस पुस्तक की काफी प्रशंसा की थी। जिज्ञासावश मैंने 'और देव पुरुष हार गये' को पढ़ना शुरू कर दिया। मैं ज्यों-ज्यों यह पुस्तक पढ़ता गया, त्यों-त्यों दिमाग में से अन्धविश्वास के जाले

शेष पृष्ठ 21 पर

मत रहना स्कूल के भरोसे

डा. अबरार मुल्तानी

मुकेश अंबानी ने एक बार बताया था कि उनके पिता धीरूभाई अंबानी हमेशा से चाहते थे कि उनके बच्चे नए अनुभव, गतिविधियां और विचार सीखें- 'मुझे याद है कि मेरे पिता कभी भी हमारे स्कूल में नहीं आए, एक बार भी नहीं। यद्यपि वह हमारे ऑल राउंड विकास में ज्यादा दिलचस्पी लेते थे। जरा सोचिए। साठ के दशक में उन्होंने अखबार में शिक्षक के लिए एक विज्ञापन दिया था, जिसका मुख्य कार्य था गैर-अकादमिक शिक्षण प्रदान करना; उन्हें बच्चों को सामान्य ज्ञान देना था।'

'उन्होंने अनेक लोगों का साक्षात्कार लिया और उनमें से महेंद्रभाई व्यास को चुना, जो न्यू एरा स्कूल में पढ़ाते थे। महेंद्रभाई हर शाम उनके घर आते और 6.30 या 7 बजे तक ठहरते। उन्हें बच्चों के सामान्य ज्ञान पर ध्यान देना था। वे हॉकी, फुटबॉल और भिन्न प्रकार के खेल खेलते, कूपरेज में मैच देखते, बसों और रेलों में घूमकर बॉम्बे के विभिन्न भागों को देखा करते। वे हर साल 10-15 दिन के लिए किसी गांव में कैंपिंग पर जाते।

देश के सबसे धनी व्यक्ति मुकेश अंबानी का उपरोक्त संस्मरण हमारी शिक्षा प्रणाली की पोल खोलता है। हमारे स्कूल वास्तव में भविष्य के कर्मचारी बना रहे हैं। यह बात धीरूभाई अंबानी अच्छे से जानते थे इसलिये उन्होंने बच्चों की शिक्षा के लिये स्कूलों पर ज्यादा भरोसा नहीं किया और अपने बच्चों के ऑल राउंड विकास के लिये अलग से शिक्षक की नियुक्ति की और परिणाम हमारे सामने है-देश के सबसे धनी व्यक्ति उन्हीं के बेटे हैं-मुकेश और अनिल अम्बानी।

एक बात यह भी स्पष्ट है कि अमीर या लीडर अपने बच्चों को अलग नज़रिये से शिक्षा देते हैं और आम व्यक्ति सब कुछ स्कूलों पर ही छोड़ देते हैं। वे खुश होते हैं जब उनका बच्चा अपनी यूनिफॉर्म साफ रखता है, समय पर स्कूल जाता है और आते ही अपना होम वर्क करता है और हमेशा अपने शिक्षकों को खुश रखता है। रूकिये, ज़रा गौर कीजिये क्या यही गुण एक अच्छे कर्मचारी के भी नहीं हैं ? हाँ, एक अच्छे कर्मचारी को अनुशासित, वक़्त का पाबंद और अपने बॉस को खुश रखने वाला होना चाहिए। लीडर या महानता इन सब नियमों को कभी-कभी अवश्य तोड़ेगी। माफ कीजिये मैं उद्दण्डता का हिमायती नहीं हूँ लेकिन थोड़ा बागी और लीक से हटकर चलना ही लीडरशिप का एक प्रमुख गुण है। हमारे स्कूलों का सबसे बड़ा दोष है कि यह हमारे बच्चों को भविष्य का कर्मचारी बनाने पर आमादा है।

मेरी छः साल की बेटी को सायकल चलाना सीखना था। उसने मुझसे पूछा कि पापा क्या सायकल चलाना हमें स्कूल में सिखायेंगे ? क्योंकि यह तो बहुत ज़रूरी है पापा, इससे मैं जल्दी से कहीं भी जा सकती हूँ और इसी से मैं बड़ी होकर स्कूटी भी चलाना सीखूंगी। मैंने कहा हाँ बेटा, यह वाकई ज़रूरी है इसे तो स्कूलों को सिखाना ही चाहिये। मेरी पत्नी ने बात काटते हुए कहा कि रहने दो स्कूल सायकल सिखाने में एक महीने तक तो सायकल चलाने की थ्योरी बताएंगे, सायकल के पार्ट्स के नाम और उसके पीछे लगने वाले कठिन फिज़िक्स के नियम भी पढ़ाने लगेंगे, मतलब 5 घण्टों में सीखी जा सकने वाली सायकल को 50 दिन का उबाऊ कोर्स बना देगा स्कूल। बात सही है कि हमारे स्कूल ज़िंदगी के व्यवहारिक ज्ञान को नहीं सिखाते। वे नहीं बताते कि जिन्दगी के छोटे-छोटे और महत्वपूर्ण कार्य कैसे किये जाएं। वे व्यवहारिक ज्ञान को भी बोझिल और उबाऊ तरीके से पढ़ाते हैं। तो हमारी स्कूलों का दूसरा बड़ा दोष है कि वे व्यावहारिक ज्ञान को नहीं पढ़ाते।

हमारे बच्चों को शुरूआत में शिक्षक अच्छी हैंडराइटिंग के लिये दबाव बनाते हैं और इसमें उनके शुरूआती महत्त्वपूर्ण वर्ष बर्बाद हो जाते हैं, जबकि आज के समय में आपकी हैंड राइटिंग से आपके कैरियर पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता। पेन-पेपर लगभग खत्म होते जा रहे है। मोबाइल, कम्प्यूटर, लैपटॉप पर सबकी राइटिंग एक जैसी ही दिखती है। जब आप यह लेख पढ़ रहे होंगे तो आपको भी मेरी वास्तविक राइटिंग दिखाई नहीं दे रही होगी, जो वास्तव में बहुत खराब है लेकिन मेरे कैरियर में यह कभी रूकावट नहीं बनी तो इस उदाहरण से मेरा यह बताना लक्ष्य है कि हमारे स्कूल या हमारी शिक्षा प्रणाली भविष्य के अवसरों एवं ट्रेंड को आंकने

में असफल है। हमारे स्कूलों की तीसरी बड़ी कमी यही है।

थॉमस एल्वा एडिसन प्राइमरी स्कूल में पढते थे. एक दिन स्कूल से घर आये और माँ को एक कागज देकर कहा, टीचर ने दिया है। उस कागज को पढ़कर माँ की आँखों में आंसू आ गए। एडिसन ने पूछा क्या लिखा है? आंसू पोंछकर माँ ने कहा- इसमें लिखा है-

'आपका बच्चा जीनियस है। हमारा स्कूल छोटे स्तर का है और शिक्षक बहुत प्रशिक्षित नहीं हैं, इसे आप स्वयं शिक्षा दें।'

कई वर्षों बाद माँ गुजर गई।

तब तक एडिसन प्रसिद्ध वैज्ञानिक बन चुके थे।

एक दिन एडिसन को अलमारी के कोने में एक कागज का टुकड़ा मिला, उन्होंने उत्सुकतावश उसे खोलकर पढ़ा, ये वही कागज था, जो टीचर ने दिया था जिसमें लिखा था- 'आपका बच्चा बौद्धिक तौर पर कमजोर है, उसे स्कूल न भेजें.'

एडिसन घंटो रोते रहे....

फिर अपनी डायरी में लिखा-

'एक महान माँ ने बौद्धिक तौर पर कमज़ोर बच्चे को सदी का महान वैज्ञानिक बना दिया।

महान थॉमस एल्वा का यह उदाहरण बताता है कि हमारे स्कूल हमारे अधिकांश बच्चों की महान छुपी हुई प्रतिभा को नहीं समझ पाते और जब समझेंगे ही नहीं तो उसे निखारेंगे कहाँ से। चौथी बड़ी कमी हमारे स्कूलों की यही है। हमारे स्कूल हमारे बच्चों को पारिवारिक रिश्ते निभाना बिल्कुल नहीं सिखाते। फौरी तौर पर माँ-बाप का सम्मान सिखाकर अपने फर्ज़ की इतिश्री कर लेते है। जीवन में हमारे परिवार से रिश्ते अति महत्त्वपूर्ण हैं सफलतापूर्वक एवं खुशहाल जीवन के लिये। पति-पत्नी के हमारे रिश्तों के बारे में हम विश्व इतिहास के शिखर पर हैं। हमारे स्कूल बच्चों को कुछ नहीं सिखाते शायद इसी लिये तलाक के मामले में हमारे रिश्ते खराब हो रहे हैं और हमारा जीवन नारकीय हो रहा है लेकिन स्कूल इन सब से बेफिक्र हैं। पारिवारिक रिश्तों का महत्त्व सिखाये बगैर हमारी सारी शिक्षाएं व्यर्थ है।

स्कूल असफलताओं या समस्याओं से लड़ना नहीं सिखाते। जब हमारे बच्चे जीवन में असफल होते हैं तो टूट जाते हैं क्योंकि उन्हें इस बारे में कुछ पता ही नहीं होता कि इससे कैसे निपटा जाए। उनका कोमल हृदय इस नाकामी से टूट जाता है और यही वजह है कि आत्महत्या आज के दौर की सबसे बड़ी कातिल बनकर उभरी है और इस कत्ल में हमारे स्कूल बराबर के सहयोगी हैं। तो छठी मुख्य गलती हमारे स्कूलों की यह है कि ये बच्चों को जीवन की असफलताओं का सामना करना नहीं सिखाते हैं।

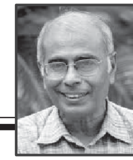
उपरोक्त प्रमुख छः समस्याएँ हैं हमारे स्कूलों के साथ जो मैंने आपके सामने रखी हैं। अब आप क्या करें ? इन छः समस्याओं के समाधान के लिये आप अब भी स्कूलों से उम्मीद लगाएं है तो शायद आप भी उन्हीं भोले-भाले करोड़ों में से है जिन्होंने अपने बच्चों का पूरा भविष्य स्कूलों के भरोसे छोड़ दिया है। आप अपने बच्चों की इन छः समस्याओं से लड़ने के लिये अपने स्तर पर भी समाधान करें, इसके लिये आप पेशेवरों की मदद भी ले सकते हैं। यदि आप पॉलिसी मेकर हैं तो फिर इन समस्याओं के निराकरण के लिये नीतियाँ बनाएँ ओर देश का भविष्य निखारें। शुरूआत खुद से ही करें ...... अपने मासूम बच्चों से कहें बेटा तुम्हें कर्मचारी नहीं लीडर बनना है, महान बनना है, सबके लिये आदर्श बनना है। अगर आपने ऐसा अपने बच्चे से कह दिया है तो फिर आप लीक से हट चुके हैं, अब बस इस रास्ते पर चले पड़ें।

पृष्ठ 20 का शेष

उतरते गए। इस पुस्तक को मैंने कई बार पढ़ा। हर बार मुझे इसमें से नया ज्ञान मिलता। उसके पश्चात् मैंने हर घटना को वैज्ञानिक कसौटी पर परखना शुरू कर दिया। सभी अन्धविश्वासियों की पोल खुलती गई। अब मैंने सभी प्रकार के ज्योतिषियों, चौंकी लगाने वालों तांत्रिकों इत्यादि से बहस करनी शुरू कर दी। पहले पहल तो वो मुझे खुद डराते, परन्तु जब मैं तर्क की कसौटी पर रख कर उनको चुनौती देता तो वे हाथ खड़े कर जाते।

अब मैं अपने तर्कशील जीवन से पूर्णतः संतुष्ट हूँ कि यदि इस पृथ्वी पर भगत सिंह के सपनों के समाज का निर्माण करना है, कि जिस समाज में मनुष्य के हाथों मनुष्य का शोषण न हो सके, तो सारी मानव जाति को तर्कशील बनना होगा। तर्कशीलता की असली मंज़िल शोषण रहित समाज ही है।

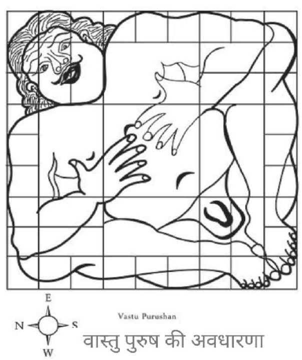
भ्रामक वास्तुशास्त्र



– डॉ. नरेंद्र दाभोलकर

महाराष्ट्र के पुने में समिति ने भ्रामक वास्तुशास्त्र से संबंधित वैज्ञानिक घोषणापत्र जारी करने के लिए परिषद का आयोजन किया। वह घोषणापत्र निम्नलिखित था :

मानवीय उन्नति के इतिहास में वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। इसी कारण वस्तुनिष्ठ ज्ञान–प्राप्ति का मार्ग संभव हुआ। भारतीय संविधान में नागरिकों के कर्तव्यों का जिक्र है, उसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण और खोजक बुद्धि को अपनाना महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य बताया गया है। नई शिक्षा–नीति में वैज्ञानिक मनोभावों की निर्मिति को महत्वपूर्ण माना गया है।



वास्तु पुरुष की अवधारणा

निरीक्षण, तर्क, अनुमान, प्रयोग पद्धति और कार्य–कारण भाव को वस्तुनिष्ठता से जाँचना वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रमुख लक्षण होता है। लेकिन इसके विपरीत 'मानवीय बुद्धि और जीवन को कोई अज्ञात शक्ति नियंत्रित करती है' जैसी बात पर ही अधिकतर लोग विश्वास रखते हैं। इस शक्ति की पनाह लेना, उसकी पूजा करना, उसका आशीर्वाद प्राप्त करने में ही अपना भला होने की मानसिकता इस विश्वास से ही बनती है। हर पल विज्ञान की देन को अपनाने वाला मनुष्य विज्ञान की विचारधारा को नकारता नजर आ रहा है।

इसकी परछाईं भ्रामक वास्तुशास्त्र में मिलती है। वास्तुकला महाविद्यालय में पढ़ाया जाने वाला शास्त्र आधुनिक विज्ञान पर निर्भर है। शुभ–अशुभ, लाभ–हानि का संकेत देने वाली तथाकथित वास्तुकला का दैवी ज्ञान भ्रामक कल्पनाओं पर निर्भर है। उसकी प्रस्तुति में कई अशास्त्रीय कल्पनाएँ वैज्ञानिक परिभाषा में प्रस्तुत करने के सत्य की खोज करना कठिन बनता है। समाज दिग्भ्रमित हो सकता है। इसके साथ 'वास्तु से लाभ होने' की कल्पना सीधे भाग्य और नियति से व्यक्ति और वास्तु को जोड़ देती है। ये सारी बातें अवैज्ञानिक तो हैं ही, साथ ही साथ समाज और राष्ट्र के लिए अहितकारक भी। सही मायने में इस देश के करोड़ों गरीबों के घरों की समस्या इस इलाके के वास्तु घटकों का उपयोग कर सुयोग्य और सस्ते घरों का निर्माण कैसे किया जाए, यह है। ऐसे समय समाज के इस प्रश्न का उचित ज्ञान अधिक प्रभावशाली ढंग से रखना आवश्यक तथा हितकारी है। इसलिए अपने जीवन की समस्याओं की पहचान ऐसी भ्रामक कल्पनाओं के माध्यम से न कर प्रयत्नवाद और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करने का आह्वान हम इस घोषणापत्र के द्वारा कर रहे हैं।

इसके पठन के बाद डॉ. जयंत नारलीकर जी ने सबसे पहले अपना हस्ताक्षर कर इसे प्रसारित किया।

दत्ता नरवणे की चुनौती

पूना के दत्ता नरवणे अपने–आपको वास्तुशास्त्र विशेषज्ञ समझते हैं। जब परिषद चल रही थी तब वे इसलिए प्रयत्नशील थे कि उन्हें बोलने का मौका दिया जाए। लेकिन उनकी माँग ठुकराई जाने पर उन्होंने परिषद में उपस्थित लोगों में पर्चे बाँटे। उसका मजमून और चुनौती इस प्रकार की थी :

'एस.एन.डी.टी.

कार्यालयीन बंद वास्तु, कर्वे रोड, पूना।

वास्तु / भूभाग /रचना / निरीक्षण / परीक्षण / प्रतिवेदन/ कार्य क्र. 2290/6 जुलाई, 1996, कर्वे रोड, पूने

आग्नेयी व्याघ्रमुखी तिकोना दिशाहीन भूभाग किसी भी प्रकार के रहन–सहन के लिए घातक तथा खतरनाक होता है। इस पर वास्तु का निर्माण करने में कई बाधाएँ आती हैं। यदि वास्तु का निर्माण भी हुआ, तो भी वह वास्तु रहने वाले के लिए निरुपयोगी होती है क्योंकि इस वास्तु की दिशा आग्नेयमुखी है। इसके साथ चुंबकीय प्रवाह भूभाग और वास्तु के मध्य से जाने से भूभाग और वास्तु दोनों अस्थिर बने हैं। साथ ही इस भूभाग का आकार तिकोना है, जिसे केवल पाँच ही दिशाएँ हैं, जिसमें दक्षिण, आग्नेय, पूरब, ईशान तथा उत्तर ही है, बाकी पश्चिम, नैर्ऋत्य तथा वायव्य दिशा न होने से वह भूभाग दिशाहीन बनता है। किसी भी भूभाग के लिए 4 मुख्य दिशाओं के साथ 4

उपदिशाओं का होना अनिवार्य रहता है। उससे भूभाग और वास्तु का निर्माण स्थिर होता है। उल्लिखित तिकोने भूभाग की वास्तु का निर्माण करीब-करीब ब्रह्मस्थान में कर दक्षिण की ओर अधिक अंतर रखा गया है। इसके साथ ही वास्तु का निर्माण आग्नेय दिशा की ओर किया गया है तथा मुख्य द्वार आग्नेय दिशा में है। इस वास्तु की आग्नेय और वायव्य दिशाओं में बहुत ज्यादा अंतर है तथा ईशान और नैऋत्य दिशाओं की चौड़ाई कम है। दक्षिण का हिस्सा लम्बा होकर पश्चिम का कोना कटा हुआ है। इसी कारण वह वास्तु पिछले 25 वर्षों से खाली पड़ी है तथा इस पर खर्च किए गए रुपए व्यर्थ रहे हैं।

मेरी राय में गंभीर वास्तुदोष के कारण यह घटित हुआ है। ऐसे उदाहरण कई जगहों पर देखने को मिलते हैं।

अंनिस के कार्यकर्त्ता उल्लिखित भूभाग और वास्तु में रहकर दिखाएँ। इस वास्तु में सुपरिवार रहें क्योंकि वास्तु के पारिवारिक, आर्थिक, मानसिक, शारीरिक तथा सामाजिक परिणाम रहने वाले पर होते हैं। इसे प्रमाणित करने के लिए इस वास्तु के निर्माण में किसी भी प्रकार के बदलाव न कर कम से कम 6 महीने रहकर दिखाएँ। 20-25 वर्षों तक बंद रही वास्तु का उपयोग कर दिखाने का आह्वान उन्हें है। वास करने से पहले लिखित प्रतिज्ञापत्र देना आवश्यक होगा। पाँच पंचों के साक्ष्य से इन सभी बातों को तय करना अनिवार्य है।

इस वास्तु में वास करने की शर्तें-

1. सपरिवार रहने के लिए आएँ।

2. रसोई घर, शयन गृह तथा स्नानागार की जगह हम तय करेंगे। शयनगृह में पलंग रखने की जगह हमारे कहने के अनुसार ही होगी।

- रसोई का गैस रखने की दिशा हम तय करेंगे।

- इस प्रकार की व्यवस्था कर दी जाएगी।

- आप इस वास्तु में 6 महीने तक रहकर दिखाएँ। इसकी अनुभूति आप स्वयं लें और इसके बाद ही वास्तुशास्त्र पर चर्चा-टिप्पणी करें।

- बिना वजह वास्तुशास्त्र पर अनर्गल बातें करने में कोई मतलब नहीं है। अकारण प्राचीन वास्तुशास्त्र को बदनाम न करें, ऐसा हमारा उनसे निवेदन है।

आपका

(दत्ता नरवणे)

ऐसी चुनौतियाँ जहाँ के तहाँ तत्काल अपनाने-स्वीकारने की समिति की पद्धति है, जिस कारण उसकी वैचारिक दृढ़ता लोगों तक सीधे पहुँचती है।

इसलिए मैंने तुरंत घोषित किया कि (1) संबंधित व्यवस्थापन की अनुमति से समिति के कार्यकर्त्ता इस वास्तु में हमेशा रहने के लिए तैयार हैं। (2) केवल इस एक ही वास्तु में नहीं बल्कि महाराष्ट्र में ऐसी न लाभ देने वाली वास्तुओं में 'समिति कार्यालय' शुरू करने के समिति की तैयारी है। (3) इसके भी आगे जाकर सभी दृष्टि से अशुभ वास्तु का निर्माण भ्रामक वास्तुशास्त्र विशेषज्ञ करें, उस वास्तु में सपरिवार निवास करने के लिए समिति के कई कार्यकर्त्ता तैयार हैं।

उपस्थित लोगों ने जोरदार तालियों से इस निर्धारत का स्वागत किया।

भ्रामक वास्तुशास्त्र के घोषणापत्र परिषद के माध्यम से यह विषय पूरे महाराष्ट्र में व्यापक रूप में चर्चित रहा। मराठी के साथ अंग्रेजी के समाचार-पत्रों ने भी इसे प्रकाशित किया। यह विषय मध्यवर्ग की जिज्ञासा के साथ निर्माण विभाग से सीधे संबंध रखता था। निर्माण-व्यापारियों और वास्तुनिर्माण शास्त्रज्ञों (आर्किटेक्ट) में इस विषय पर दो खुले गुट थे और वे हर जिले में थे। कुछ निर्माण व्यावसायिक और वास्तुशिल्प विशेषज्ञों का इन सभी बातों पर अगाध विश्वास था और इसका प्रचार भी वे बड़े ज़ोरों से करते थे। एक गुट ऐसा था, जो इस मामले का समर्थन नहीं करता था लेकिन अपने पास आने वाले ग्राहक यदि इसकी माँग करते तो उसके अनुसार बदलाव करने में इनका विरोध नहीं करता था। उनका मानना था, वे व्यवसाय करने के लिए बैठे हैं, लोगों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण सिखाने के लिए नहीं। इसी कारण ग्राहक का समाधान ही उनका मूलमंत्र था।

इसके आगे जाने वाला निर्माण व्यावसायिकों और वास्तुशिल्पकारों का एक वर्ग और था जो अब भी है। उन्हें अपने व्यवसाय में पनपनेवाला ढोंग स्वीकार नहीं था और इसमें से कुछ तो सार्वजनिक तौर पर इसका विरोध करने की इच्छा रखते थे। स्वाभाविकता से अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति का यह अभियान उन्हें उपयुक्त और आवश्यक लगा। इसी कारण इस विषय पर महाराष्ट्र में कई जगहों पर निर्माण व्यावसायिकों और वास्तुशिल्प विशेषज्ञों की संगठनों ने मेरे

व्याख्यान आयोजित किए। इन सभी जगहों पर भारी भीड़ थी और मेरे हमेशा के भाषण के लिए आने वालों से यह श्रोतावर्ग अलग था।

पहली सभा पूना में हुई जहाँ 'वास्तुप्रकाश' नामक सुप्रसिद्ध किताब के लेखक श्रीहरि लिमये के साथ वाद-विवाद का कार्यक्रम था। श्रीहरि व्यवसाय से इंजीनियर थे। उनकी किताब में बताए गए निवेदन के अनुसार उन्हें व्यवसाय में यश नहीं मिलता था। उसकी वजह से आर्थिक खींचातानी रहती थी। इस दरमियान उन्हें इस वास्तुशास्त्र का संदर्भ मिला। उन्होंने इसका अध्ययन किया और प्राचीन वास्तुशास्त्र की पहचान आज के विश्व को बताने के लिए 'वास्तुप्रकाश' की रचना तथा प्रकाशन किया। महाराष्ट्र में सुप्रसिद्ध साहित्यकार की किताबों का तीन हजार का संस्करण दो वर्ष में खत्म होना अच्छा लक्षण बताया जाता है। ऐसी जगह पर लिमये की 'वास्तुप्रकाश' नामक पहली ही किताब का तीन हजार का संस्करण केवल दो महीने में खत्म हो गया। अगले दो वर्ष में बारह संस्करण निकाले गए। (महाराष्ट्र के पढ़े-लिखे मध्यवर्ग की मानसिकता को उजागर करने के लिए यह काफी है। पत्नी ने यह किताब पढ़ी और इसके अनुसार बड़ी उमंग से बनाए गए घर की रचना और सजावट में आमूलचूल बदलाव कर बरबादी कर दी, व्यथित होकर ऐसा बताने वाले कई उच्चशिक्षित लोग मुझे महाराष्ट्र में जगह-जगह पर मिले।)

लिमये आधा-पौन घंटे तक बोलेंगे, बाद में मैं बोलूँगा और उस समय के 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के पूने संस्करण के सम्पादक आनंद आगाशे अध्यक्ष होंगे, ऐसी व्यवस्था पहले तय थी। आवश्यकता के अनुसार हमें दुबारा बोलने का अवसर देने की भी योजना थी। कार्यक्रम के समय घमासान वर्षा हो रही थी, सभागार खचाखच भरा हुआ था। लोग बरामदे में छाते लेकर खड़े थे।

कार्यक्रम के आरम्भ में आगाशे ने मंतव्य दिया। बाद में हरिभाऊ लिमये का भाषण हुआ। तब तक एक घंटा बीत चुका था। मैं मंतव्य के लिए खड़ा हुआ और बिजली चली गई। सभागार में आवाज पहुँचना कठिन था। लेकिन पूना में बिजली जल्दी वापस आने की संभावना के कारण कार्यक्रम को रोका गया। खचाखच भरे सभागार में गर्मी बहुत बढ़ रही थी। बहुत समय हुआ। बिजली के आने की संभावना नजर नहीं आ रही थी और एक भी श्रोता अपनी जगह से हिलने का नाम नहीं ले रहा था। लोग शांति बनाए हुए थे। मैं धीरज रखकर बोलूँगा, ऐसा ऐलान करके मैंने लगभग पौन घंटे तक भाषण किया और उसके बाद प्रश्नोत्तर हुए। कार्यक्रम पूरा होने तक न बिजली आई और न ही एक भी श्रोता सभागार से बाहर निकला। मुम्बई, अकोला, सोलापुर, बेलगाँव, कोल्हापुर, इचलकरंजी, सांगली, जलगाँव जैसी कई जगहों पर मैंने वैज्ञानिक दृष्टिकोण और वास्तुशास्त्र विषय पर व्याख्यान दिए और लगभग हर जगह पर इसी प्रकार की अनुभूति मिली।

मुम्बई की चर्चा में वास्तुशास्त्र किताब के रचयिता और उच्च न्यायालय में कई वर्ष तक वकालत करने वाले एक वकील ने एक ठोस वक्तव्य दिया। जिस मिल (फैक्टरी) में शौचकूप ईशान दिशा में बँधी होती है, वह व्यवसाय निश्चित तौर पर असफल होता है। ईशान दिशा 'ईशा' यानी साक्षात् भगवान की दिशा है। इसी कारण उस दिशा में शौचकूप बाँधकर भगवान को अपमानित करने का परिणाम तो भुगतना ही पड़ेगा। ये शौचकूप धार्मिक विधि-विधान से नैऋत्य दिशा की ओर हटाने से बंद मिले दुबारा शुरू होने की बात भी उन्होंने दृढ़ता से रखी। महाराष्ट्र के कई उद्योग संबंधी बस्तियों में हजारों मिलें बंद पड़ी हैं। उनमें से जिस मिल के शौचकूप ईशान दिशा की ओर हैं उन्हें हटाकर नैऋत्य की ओर ले जाने की आसान सी तरकीब शासन करे। बंद मिलें पुनः शुरू होंगी, पूँजी बढ़ती रहेगी, मजदूरों को रोजी-रोटी मिलेगी। इस प्रकार का प्रयोग क्यों न किया जाए? ऐसा प्रश्न मैं जगह-जगह पर आयोजित सभाओं में पूछता था। वस्तुतः यह प्रयोग करने का काम समिति का न होने की बात भी मैं स्पष्ट करता था। मेरा विवेचन यह रहता कि जो लोग वास्तुशास्त्र को शास्त्र की श्रेणी में आँकने की बात करते हैं, उन्हें इस बात का वस्तुनिष्ठ प्रमाण देना चाहिए।

समिति के अध्ययनशील कार्यकर्ता डॉ. प्रदीप पाटील ने 'भ्रामक वास्तुशास्त्र' नाम से ससंदर्भ किताब लिखी है। इस किताब का विमोचन समारोह पूना के बालगंधर्व नाट्यगृह में डॉ. श्रीराम लागू के हाथों सम्पन्न होने वाला था। वह तो हुआ, लेकिन उस समय मेरे द्वारा जाहिर की गई एक खबर से हंगामा खड़ा हुआ। इस विमोचन समारोह की भूमिका में

मैंने कहा कि पिंपरी-चिंचवड महानगर निगम के आयुक्त प्रवीणसिंग परदेशी जी ने आयुक्तपद की जिम्मेदारी अपनाने के बाद अपने सरकारी निवास में वास्तुशास्त्र के अनुकूल आवश्यक बदलाव कर लिये हैं। वस्तुत: यह बदलाव महानगर निगम के पैसों से अर्थात् नागरिकों के द्वारा जमा पूँजी से हुए हैं। इसी कारण यह पैसा परदेशी जी महानगर निगम की तिजोरी मैं जमा करें।

असल में सार्वजनिक तौर पर आरोप-प्रत्यारोप करना मेरी प्रकृति नहीं है। लेकिन इस कार्यक्रम में आने के पूर्व मुझे यह जानकारी उनके पूर्व के आयुक्त द्वारा ही मिली थी। वह बात आपत्तिजनक लगी और मन में ताजा रहने से आंदोलन में गति लाने के उद्देश्य से मैंने जाहिर तौर पर उसका उल्लेख किया।

समारोह के खत्म होते ही पत्रकारों के द्वारा परदेशी जी के घर फोन की खनखनाहट शुरू हुई। उन्होंने इस बात से साफ इनकार करते हुए इसे प्रमाणित करने की चुनौती दी। जिनसे मैंने यह जानकारी प्राप्त की थी, वह प्रत्यक्ष प्रमाणित थी लेकिन जानकारी देने वाले भी उच्च पद के अधिकारी रहने से उन्होंने सार्वजनिक तौर पर भूमिका लेने से इनकार कर दिया। इससे मेरी अटकलें बढ़ गईं। दूसरी ओर परदेसी जी ने मेरे ऊपर मानहानि का दावा करने की मंशा जाहिर की। दादा साहब नाईकनवरे पूना के प्रसिद्ध निर्माण व्यावसायिक तथा अंधश्रद्धा निर्मूलन आंदोलन के ज्येष्ठ संबंधी भी हैं। उन्होंने परदेशी जी से संपर्क कर हम दोनों की भेंट कराने की इच्छा प्रकट की। इस आधार पर परदेशी जी के घर मुलाकात तय हुई। नाईकनवरे जी के साथ मैं परदेशी जी के प्रासाद सदृश निवास में सुबह 10 बजे पहुँचा। तब वे महानगर निगम में थे। दादा साहब ने फोन पर उनसे संपर्क किया। हमारे सीधे घर पर आने की बात पर उन्होंने नाराजगी जताई। हम थोड़े हड़बड़ाए, क्योंकि भेंट घर में ही तय हुई थी। परदेशी की सूचना से हम उनके घर से निकलकर महानगर निगम के उनके कार्यालय में पहुँचे। वहाँ पर अच्छी चर्चा हुई। उन्होंने अंधश्रद्धा निर्मूलन आंदोलन में की जाने वाली पशुहत्या को बंद करने के लिए किए गए कार्य का ब्यौरा उन्होंने हमें दिया। वास्तुशास्त्र पर विश्वास न रखने की बात भी कही, जिससे मेरी अड़चनें थोड़ी और बढ़ी। इस समय तक मेरे ध्यान में यह भी आया कि एक तो उन्होंने निवासस्थान में प्रवेश करने वाले सभी उनके कनिष्ठ नौकर थे और जिस उच्च अधिकारी ने यह जानकारी दी थी, वे मुँह बंद कर बैठे थे। दूसरी ओर ऐसी बातों पर विश्वास न रखने की बात परदेशी कर रहे थे, जो मेरी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था। निवासस्थान में बदलाव करने की बात वैयक्तिक अभिरूचि की थी और प्राचीन वास्तुशास्त्र को आधार मानकर बदलाव करने की बात अंधविश्वास की थी जिसके बारे में परदेशी जी नकारात्मक भूमिका ले रहे थे। मैंने उनकी इस भूमिका के आधार पर इस विवाद को खत्म करने का मन बनाया। उनके कमरे से हम तीनों बाहर निकले कि पत्रकारों की फौज ने हमें घेर लिया। मैंने साधारण रूप से उपर्युक्त आशय का निवेदन कर इस विवाद के खत्म होने की घोषणा की। परदेशी जी भी वहाँ थे लेकिन उन्होंने विरोध में कुछ नहीं कहा। बाद में इससे संबंधित मेरी भूमिका का एक पर्चा सभी समाचार-पत्रों को पहुँचाया गया।

दूसरे दिन समाचार-पत्रों में छपी सारी खबरें पूर्णत: परदेशी जी के समर्थन में थीं। मेरे पीछे हटने तथा गलती स्वीकारने की बात लिखी गई थी। परदेशी जी का आयुक्त के रूप में समाचार-पत्रों से रहने वाला संबंध कारगर साबित हुआ। आज विचार करने पर लगता है, इस मामले में मैंने गलती की। मुझे उस समय पत्रकारों के साथ परदेशी को लेकर उनके घर पर जाना चाहिए था। वहाँ भी घर का दरवाजा उत्तर की ओर है, इसे दिखाना चाहिए था। परदेशी के यहाँ आने के पूर्व घर का दरवाजा पश्चिम की ओर होने की रूपरेखा पेश करनी चाहिए थी। मेरी जानकारी सही थी, संभवत: सत्ता के बल पर उसे झूठ ठहराने का प्रयास किया जाता, फिर भी यह जंग मुझे अंत तक लड़नी चाहिए थी। परदेशी जी ने दरवाजे की दिशा बदली है। लेकिन इसका प्रमाण मिलेगा या नहीं, इस विचार से मैं आशंकित था। साथ ही वास्तुशास्त्र के आधार पर मैंने बदलाव नहीं किए हैं, उनके इस कथन पर मैं विश्वास कर बैठा। इसके कारण मेरे वक्तव्य को और वक्तव्य के कारण आंदोलन को भी हानि हुई। आज ऐसा लगता है कि इसे मैं टाल सकता था। वस्तुत: आंदोलन ने इस अपयश को अपनाया। पूरे महाराष्ट्र में भ्रामक वास्तुशास्त्र के विरोध में सीधे आवाज उठाई और एक सीमा तक इसका लाभ भी हुआ। लेकिन भ्रामक वास्तुशास्त्र **शेष पृष्ठ 31 पर**

1857 : एक क्रांति

– साहिल

'समाजवाद की पूर्ण विजय के समय और उसके बाद स्वर्ण (gold) का महत्व' नामक लेख में लेनिन लिखते हैं– ''महान क्रांति की वर्षगांठ मनाने का सबसे बेहतर तरीका यह है कि हमें उन समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, जो इस क्रांति में हल नहीं हो पाई हैं।'' 1857 के महान विद्रोह की वर्षगांठ मनाते हुए हमें लेनिन की उपरोक्त बात को ध्यान में रखना चाहिए। अकादमिक इतिहासकार और जन इतिहासकार में सबसे बड़ा फर्क यह है कि अकादमिक इतिहासकार बीते घटनाक्रम पर बात करते हुए उससे कोई कार्यभार नहीं निकालता, जबकि जन इतिहासकार इतिहास को आज के इतिहास निर्माण के कार्यभार से जोड़ देता है।

वास्तव में 1857 की क्रांति समूचे दक्षिण एशिया में जनता की सशस्त्र बगावतों की उस अनवरत परंपरा का चरम बिन्दु था, जो अंग्रेज उपनिवेशवादियों के यहां आने के बाद से ही लगातार जारी रहा। 'मुख्यधारा' की इतिहास पुस्तकों में 1885 में कांग्रेस की स्थापना से लेकर 1947 तक कांग्रेस के तथाकथित अहिंसात्मक आन्दोलन को इस तरीके से पेश किया गया जाता है कि 1857 और इसके पहले के कम से कम 100 वर्षों के उस इतिहास पर पर्दा पड़ जाता है, जिससे इस देश की दबी–कुचली जनता ने सैकड़ों छोटी–बड़ी सशस्त्र बगावतों द्वारा अंग्रेजी साम्राज्य की चूलें हिला दी थीं और उस गौरवशाली परंपरा की नींव रख दी थी, जिसे नजरअंदाज कर आज कोई भी सच्चा साम्राज्यवाद–सामंतवाद विरोधी आंदोलन खड़ा नहीं किया जा सकता।

एक अनुमान के मुताबिक 1763 से 1857 के बीच 40 से अधिक सशस्त्र बगावतें हुईं। इसके अतिरिक्त सैकड़ों छोटी बगावतों ने कभी भी अंग्रेजी साम्राज्य को चैन से नहीं बैठने दिया। इन बगावतों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है – आदिवसियों के विद्रोह। वास्तव में इनकी भूमिका अभी भी सही ढंग से इतिहास में दर्ज नहीं हो पाई है। जबकि यह आदिवासी ही थे, जिन्होंने शुरू से अंत तक अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र युद्ध में समझौता विहीन संघर्ष किया था। 1766 में झारखंड में पहाड़िया विद्रोह से लेकर 1855–56 के संथाल विद्रोह तक आदिवासी समाज के भीतर से ऐसे अनेक नेतृत्वकारी योद्धा पैदा हुए, जिनके बारे में आज भी हमें बहुत कम जानकारी है। रानी सर्वेश्वरी, तिलका मांझी, तांत्या भील, राम जी गोंडा, विष्णु मानकी, दुक्खन मानकी, बिंदराय–सिंहराय, बिरसा मुंडा सीदो–कान्हू और चांद–भैरव मुर्मू आदि ने कुछ समय के लिए ही सही, अपने अपने इलाके को अंग्रेजों से मुक्त करके स्वतंत्र सरकार का गठन कर लिया था। वहीं पूर्वोत्तर के मणिराम बरुआ, तिरोतसिंह, टिकेंद्रजीत सिंह, रानी रौपुलियानी आदि ने अंग्रेजी साम्राज्य के बढ़ते रथ को काफी समय तक रोके रखा था।

दक्षिण के राज्य भी इससे अछूते न थे। रानी चेन्नम्मा का संघर्ष कौन भूल सकता है। लेकिन 1806 में हुई वेल्लोर की सशस्त्र बगावत बहुत कुछ मायनों में 1857 का एक रिहर्सल लगती है। विद्रोह के समय वेल्लोर के किले में 1500 भारतीय सैनिक व 370 अंग्रेज अफसर थे। नए ड्रेस कोड के तहत हिंदुओं व मुस्लिमों को परंपरागत पगड़ी की जगह चमड़े की कैप, जिसके बारे में चर्चा थी कि यह सुअर या गाय के चमड़े से बनाई गई है, लगाने को कहा गया। दाढ़ी रखने पर पाबंदी लगा दी गई। विद्रोह के लिए जिस चिंगारी की जरूरत थी, वह इसने कर दिया। इससे पहले 1804 के मदुराई सैन्य विद्रोह और 1805 के त्रावनकोर सैन्य विद्रोह ने पहले ही माहौल गर्म कर रखा था। दक्षिण के फकीर आंदोलन में पहले से ही जनता के बीच अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह का प्रचार शुरू कर दिया था। पूर्ण योजना के अनुसार 10 जुलाई को सुबह सैनिकों ने बगावत शुरू कर दी 15 अंग्रेज अफसर तथा 100 अंग्रेज सिपाहियों को मौत के घाट उतार दिया। जनता बड़ी संख्या में वेल्लोर किले के आस–पास एकत्रित होने लगी। वेल्लोर पर कब्जा करने के बाद विद्रोही सिपाहियों ने टीपू सुल्तान के दूसरे बेटे (टीपू सुल्तान का पूरा खानदान इसी किले में कैद था) हैदर को अपना राजा घोषित कर दिया हालांकि फतह हैदर ने साहस नहीं दिखाया और सिपाहियों का नेतृत्व करने से इंकार कर दिया। तत्पश्चात् यह विद्रोह भी 1857 की भांति ही बहुत क्रूरतापूर्वक दबा दिया गया। इसके बाद बहादुर शाह जफर की भांति ही टीपू सुल्तान के खानदान को भी मैसूर से काफी दूर कोलकाता की एक जेल में रख दिया गया।

इसी पृष्ठभूमि में 1857 में वह महान विद्रोह शुरू हुआ, जिसे मार्क्स ने उचित ही 'भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम' कहा। 10 मई 1857 को मेरठ शहर से शुरू हुआ यह सैन्य विद्रोह

शीघ्र ही उत्तर में पंजाब, दक्षिण में नर्मदा, पूरब में बिहार-झारखंड, तथा पश्चिम ने ग्वालियर तक फैल गया। दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, बुंदेलखंड तथा बिहार का बड़ा इलाका इस लड़ाई का सघन केंद्र था। वास्तव में 1857 के इस महान् विद्रोह की भूमिका उसी वक्त तैयार हो गई थी, जब 1856 में डलहौजी के नेतृत्व में ईस्ट इंडिया कंपनी ने अवध प्रांत पर अधिकार कर लिया। उस समय कंपनी की सेना में अवध प्रांत से संबंध रखने वाले करीब 75,000 सैनिक थे। हालांकि इन सैनिकों ने दूसरे प्रांतों पर कब्जा करने में कंपनी सरकार की मदद की थी, लेकिन जब उनका खुद का प्रदेश कंपनी के अधिकार में चला गया, तो वे बेचैन हो उठे। अवध के इन 75,000 वर्दीधारी किसानों ने ही 1857 की क्रांति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। अवध प्रांत के कंपनी सरकार के हाथ में चले जाने से इन सैनिकों की आर्थिक स्थिति अचानक डांवाडोल हो गई। क्योंकि इन सैनिकों को किसान के रूप में अब ज्यादा टैक्स चुकाना पड़ रहा था। यही स्थिति कमोबेश उन सभी कंपनी-सैनिकों की थी, जिनकी बहुतायत उन किसान वर्गों से थी, जो ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा बड़े पैमाने पर यहां के देसी उद्योग धंधों, विशेषकर हथकरघा उद्योग धंधों, विशेषकर हथकरघा उद्योग को तबाह करने के कारण छोटे कारीगर बड़ी मात्रा में बेरोजगार हो गए थे। इस वर्ग का भी किसानों-सिपाहियों से गहरा नाता था। 1857 के विद्रोह में यही वह कड़ी थी, जिसने न सिर्फ विद्रोह को व्यापक बनाया, वरन सैनिक किसान गठजोड़ की मजबूत बुनियाद डाल दी। दूसरी ओर कंपनी सरकार की नई जमींदारी नीति ने (जिसके कारण भारत सामंती से अर्थसामंती देश में बदल गया) जिन पुराने जमींदारों के हितों को नुकसान पहुंचाया था। वह भी अंग्रेजों के खिलाफ हो गए और 1857 के विद्रोह को नेतृत्व देने के लिए आगे आ गए। हालांकि इनकी वर्गीय सीमा ही इस महान विद्रोह के असफल होने का कारण भी साबित हुई।

10 मई को विद्रोह शुरू होने के दो-तीन महीने पहले से ही अनेक स्थानों पर सिपाहियों के असंतोष की खबरें मिलने लगी थीं। इसका तात्कालिक कारण नई इनफील्ड बंदूक थी, जिसके कार्टिलेज को मुंह से काटना पड़ता था और जिसके बारे में चर्चा थी कि वह गाय और सुअर की चर्बी से बने हुए हैं। फरवरी-मार्च में ही बहरामपुर बैरक के सैनिकों ने इनफील्ड बंदूक चलाने से इंकार कर दिया। उन्हें तुरंत गिरफ्तार कर लिया गया। उसी समय कोलकाता के निकट बैरकपुर छावनी में मंगल पांडे और कुछ साथियों ने स्वतः स्फूर्त ढंग से विद्रोह शुरू कर दिया और अपने अंग्रेज अफसरों पर आक्रमण कर दिया। मंगल पांडे की गोली से एडजुडेण्ट लेफ्टिनेंट हेनरी बाग बुरी तरह घायल हो गया। विद्रोह तुरंत दबा दिया गया और 29 मार्च 1857 के दिन मंगल पांडे को देशद्रोह के आरोप में फांसी पर लटका दिया गया। इसने आग में घी का काम किया। 10 मई 1857 की सुबह मेरठ के सैनिकों ने विद्रोह का झंडा बुलंद कर दिया। उन्होंने सारी अंग्रेज अफसरों को मार डाला और अपने साथियों को रिहा कराते हुए हथियारों सहित दिल्ली की ओर प्रस्थान कर गए। शाम होते-होते वे दिल्ली पहुंच गए। यहां मेरठ के सिपाहियों के साथ मिलकर दिल्ली में मौजूद सिपाहियों ने अपने अफसरों का कत्ल करके पूरी दिल्ली अपने कब्जे में लिख कर ली। दूसरे ही दिन सिपाहियों ने दिल्ली को आजाद घोषित करते हुए बहादुर शाह ज़फर को भारत के बादशाह घोषित कर दिया। दिल्ली इस विद्रोह का केंद्र बन गई और बहादुर शाह जफर इसके प्रतीक। शुरूआती हिचकिचाहट और सिपाहियों के दबाव के बाद बहादुर शाह जफर ने भारत के सभी शासकों के नाम यह सन्देश प्रसारित किया कि वे अंग्रेजी साम्राज्य को उखाड़ फेंके और मुगल बादशाह के नेतृत्व में एक संघ का निर्माण करें। इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई और जगह-जगह उन राजाओं और जमींदारों ने जिन्होंने इस महान विद्रोह में भाग लिया था। बहादुर शाह जफर के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करते हुए अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया। नानासाहेब, रानी लक्ष्मीबाई, बेगम हजरत महल, कुंवर सिंह इसमें मुख्य थे। इस युद्ध में वीरता के एक से एक कीर्तिमान स्थापित हुए। कानपुर में युद्ध का नेतृत्व वैसे तो नाना साहिब के हाथ में था, लेकिन युद्ध की असली जिम्मेदारी उनके सहयोगी तांत्या टोपे के कंधों पर थी। तांत्या टोपे गुरिल्ला युद्ध में पारंगत थे। कानपुर-लखनऊ पर अंग्रेजों का दोबारा कब्जा हो जाने के बावजूद, तांत्या टोपे ने हार नहीं मानी और मध्य भारत के घने जंगलों से अपना गुरिल्ला युद्ध जारी रखा। अप्रैल 1859 में ही जाकर उनके एक जमींदार दोस्त की गद्दारी के कारण उन्हें पकड़ा जा सका। बाद में उन्हें फांसी दे दी गई। नाना साहब के दूसरे सहयोगी अजीमुल्लाह राजनीतिक प्रचार में माहिर थे। इस विद्रोह से आम जनता को जोड़ने में उनकी काफी बड़ी भूमिका थी। रानी लक्ष्मीबाई के वीरता के किस्से तो मशहूर हैं, लेकिन यह भी उतना ही बड़ा सच है कि आम सिपाहियों का दबाव, (जो कि लक्ष्मीबाई के खिलाफ विद्रोह की सीमा तक बढ़ चुका था) ही लक्ष्मीबाई को युद्ध में खींचने का एक बड़ा कारण था। रानी

लक्ष्मीबाई की सहयोगी झलकारी बाई (जो दलित जाति से थीं) का इस युद्ध में बड़ा योगदान था। वास्तव में आदिवासी विद्रोह के अलावा यह पहला मौका था, जब महिलाओं ने भी युद्ध में विभिन्न रूपों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। इससे पहले सिर्फ आदिवासी विद्रोह में ही महिलाओं की युद्ध में भागीदारी देखी जाती थी। झांसी के इस युद्ध में महिलाओं को खींच लाने का बड़ा श्रेय झलकारी बाई को जाता है। फैजाबाद में मौलवी अहमदुल्लाह ने विद्रोह का नेतृत्व किया। मौलवी अहमद ने विद्रोह का नेतृत्व किया। मौलवी अहमदुल्लाह सैन्य रणनीति और राजनीतिक प्रचार दोनों में माहिर थे। उन्होंने अवध की सामान्य जनता को इस युद्ध से जोड़ते हुए अंग्रेजी सेना को कड़ी टक्कर दी। बिहार में इस विद्रोह का नेतृत्व करने वाले कुंवर सिंह सबसे उम्रदराज व्यक्ति थे। उनकी उम्र उस वक्त 80 वर्ष थी। इसके बावजूद उन्होंने प्रथम पंक्ति में रहते हुए सैन्य संचालन किया और अंग्रेजी सेना को कई बार शिकस्त दी। उनकी तुलना सहज ही लीबिया में इटली के खिलाफ विद्रोह का संचालन करने वाले उमर मुख्तार से की जा सकती है। हालांकि उस वक्त उमर मुख्तार की उम्र 66 वर्ष ही थी।

लेकिन इस विद्रोह के असली नायक तो व्यापक जनता के साथ-साथ किसानों के बेटे सिपाही ही थे, जो पहली बार भाड़े की सेना के रूप में नहीं, वरन व्यापक किसान जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले देशभक्त सिपाही के रूप में लड़ रहे थे, जिसका एक स्पष्ट राजनीतिक उद्देश्य था-ब्रिटिश सरकार का साम्राज्य का खात्मा। इसी परिप्रेक्ष्य के कारण 1857 में शुरू हुआ सैन्य विद्रोह बहादुर शाह जफर को भारत का शासक घोषित करते ही क्रांतिकारी युद्ध में बदल गया और इसमें बड़ी संख्या में किसानों, कारीगरों, जमीदारों, नवाबों के एक छोटे हिस्से की भागीदारी सुनिश्चित हो गई। जो लोग 1857 के इस क्रांतिकारी स्वाधीनता संग्राम को सैन्य विद्रोह का निर्णायक कारण मानते हैं, उनके पास इस बात का क्या जवाब है, कि विद्रोह शुरू होने के बाद सिपाहियों ने अंग्रेजों के खिलाफ उन्हें इनफील्ड बंदूकों का इस्तेमाल बड़े पैमाने पर किया, जिसके कार्डरेस को दांत से काटना पड़ता था और जिसके बारे में चर्चा थी कि यह गाय व सूअर की चर्बी से बने हुए हैं।

इस क्रांतिकारी युद्ध में व्यापक जनता ने न सिर्फ विद्रोही सेना की हर संभव मदद की, उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़े, वरन् बड़े पैमाने पर स्वतंत्र कार्यवाहियां कीं। क्रांतिकारी जनता के सहज निशाने होते थे-सूदखोर, नए जमींदार, तहसीलदार और थाना। यही वह चौकड़ी थी, जो अंग्रेजी साम्राज्य से मिलकर जनता पर कहर ढाते थे और येन-केन प्रकारेण उनकी जमीन जब्त कर लेती थी। अनेक स्थानों पर किसान जनता ने इन पर आक्रमण करके पुराने सारे रिकार्ड जला डाले और अपनी जमीन पर दोबारा कब्जा कर लिया। जनता की सामंतवाद-विरोधी इन कार्रवाइयों ने ही 1857 के इस मूलतः उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष को व्यापक बनाया और एक हद तक गहराई प्रदान की। क्रांतिकारी जनता ने अंग्रेजी साम्राज्य के इस सामाजिक आधार पर जबरदस्त चोट पहुंचाते हुए कुछ समय के लिए ही सही, अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ काट दी। वास्तव में कुछ क्षेत्रों जैसे बुंदेलखंड, रूहेलखंड तथा कानपुर-लखनऊ सहित बिहार के कुछ जिलों में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के लगभग सभी प्रतीकों व संस्थाओं को निशाना बनाया गया।

आम जनता की जन संग्राम में भागीदारी इस तथ्य से भी स्पष्ट हो जाती है कि सिर्फ अवध प्रांत में अंग्रेजी सेना से लड़ते हुए 1,50,000 लोग मारे गए उनमें एक लाख नागरिक थे, बाकी 50,000 सिपाही थे। विद्रोह दबाने के बाद अंग्रेजों ने जो भीषण जनसंहार चलाया, गांव के गांव जला डाले, हजारों लोगों को सार्वजनिक फांसी दी-उसने भी यह सिद्ध कर दिया कि इस महान विद्रोह के असली रचयिता सैनिकों के साथ-साथ आम किसान कारीगर जनता ही थी।

उस समय के संस्कृतिकर्मियों विशेषकर लोक कलाकारों की भी इस क्रांतिकारी विद्रोह में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका थी विशेषकर आम जनता के तीव्र इस विद्रोह के बीज बोने में लोक कलाकारों, सूफियों, कबीरपंथियों और यहां तक कि नटों और मदारियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बुंदेलखंड के इलाके में गाई जाने वाली फाग ने तुरंत ही पिछली सामंती अंतर्वस्तु को त्याग कर तत्कालीन विद्रोह की क्रांतिकारी अंतर्वस्तु को अपना लिया। कई कलाकारों ने विद्रोह शुरू होने के उपरान्त सामंती राजघरानों को त्याग कर जनता के बीच विद्रोह का प्रचार करने चले गए। 1857 के विद्रोह की पराजय के बाद जब क्रांतिकारियों ने अंग्रेजों के खिलाफ गुरिल्ला युद्ध की राजनीति अपनाई तो इन लोक कलाकारों की भूमिका भी थोड़ी बदल गई। अब यह लोक गायक जनता के बीच अपनी विधा का प्रदर्शन करते हुए अंग्रेजों की सभी गतिविधियों पर नजर रखते थे। और तत्पश्चात् क्रांतिकारियों को इत्तला कर देते थे। क्रांतिकारी इन सूचनाओं के आधार पर ही अंग्रेजों व उनके दलालों पर गुरिल्ले हमले करते थे। बुंदेलखंड के

पूरे क्षेत्र में इस पद्धति का प्रयोग विशेष रूप से हुआ।

समाज के दूसरे अन्य बड़े पेशे के लोग भी, किस कदर इस क्रांति से जुड़े हुए थे। यह सिर्फ एक उदाहरण से समझा जा सकता है। कानपुर की एक वेश्या व नर्तकी अजीजन बेगम, नाना साहब के आहवान पर इस विद्रोह से जुड़ गई। उसने अन्य महिलाओं को संगठित किया। क्रांतिकारियों के बीच गुप्त संपर्क बनाए रखने से अजीजन बेगम व इस पेशे से जुड़ी आम महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान था। गिरफ्तार होने के बाद अजीजन बेगम के सामने नाना साहब के प्रमुख सहयोगी अजीमुल्ला खां का पता लगाने के एवज में माफी देने की शर्त रखी गई, तो उसने तुरंत इंकार कर दिया। फलत: उसे गोली मार दी गई।

महान क्रांति अपने साथ सत्ता के नए रूप लेकर भी जाती है 1857 की क्रांति में सत्ता का भ्रूण था 'कोर्ट आफ एडमिनिस्ट्रेशन'। यह एक तरह की जनसत्ता थी। इससे सेना के तीनों विभागों कैवेलरी, घुड़सेना इन्फेंट्री पैदल सेना तथा आर्टलरी तोपखाना से 2-2 प्रतिनिधि तथा आम नागरिकों से 4 प्रतिनिधि अपने-अपने क्षेत्रों से बहुमत के आधार पर चुने जाते थे। 'कोर्ट आफ एडमिनिस्ट्रेशन' अपने बीच से अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनती थी। दिल्ली में स्थापित इस निकाय ने सिकंदर बख्त को अपना अध्यक्ष चुना। इसी निकाय ने 11 मई 1857 को बहादुर शाह जफर को भारत का बादशाह घोषित किया। पूरे विद्रोह के दौरान वास्तविक शक्ति इसी निकाय में केंद्रित रही। बहादुर शाह जफर वस्तुत: एक प्रतीक भर रहा। वास्तव में सिकंदर बख्त के नेतृत्व में दिल्ली तथा आसपास के इलाकों में यह निकाय पूरे अधिकार के साथ काम करती रही। जमीन राजस्व आदि के मामले भी यही निकाय निपटाती रही। दिल्ली तथा आसपास की जनता व सिपाहियों ने पहली बार जनसत्ता का स्वाद चखा था। रामविलास शर्मा जैसे इतिहासकारों ने तो इसे 'सोवियत' तक की संज्ञा दे डाली थी। यह प्रयोग दूसरी जगहों पर नहीं दोहराया जा सका। लेकिन इतना तो तय था कि विद्रोह के सभी केंद्रों पर महत्वपूर्ण निर्णयों में सिपाहियों की महत्वपूर्ण भागीदारी थी। जनता ने भी अपने-अपने क्षेत्रों में अपनी पसंद के जमींदारों, नवाबों को गद्दी पर बैठाना शुरू किया। यह शायद युग की सीमा ही थी, कि जनता विद्रोह के फलस्वरूप पैदा हुए राजनीतिक शून्य को क्रांतिकारी जनसत्ता द्वारा नहीं, बल्कि कुछ भले नवाबों-जमींदारों से भर रही थी। दिल्ली के आसपास 'कोर्ट आफ एडमिनिस्ट्रेशन' की स्थापना काफी सीमित तथा नाकाफी थी।

इस विद्रोह की एक अन्य खासियत थी-हिंदू-मुस्लिम एकता। वास्तव में वैसी एकता कभी देखी नहीं गई थी। कंपनी के सिपाहियों में बहुत संख्या हिंदुओं की थी, लेकिन उन्होंने बहादुर शाह जफर को देश का शासक घोषित करने में 1 सेकंड की भी देर न की। उनके इस ऐलान ने यह साबित कर दिया कि मुगल बादशाह भारत की राजनीतिक एकता का प्रतीक है। लेकिन अफसोस कि ठीक 90 साल बाद 1947 में अंग्रेजों और उसके भारतीय दलालों के जहरीले खेल में फंसकर वही हिंदू, मुस्लिम एक दूसरे का कत्लेआम करने पर उतर आए। 1857 से हम सबक नहीं ले पाए। लेकिन अंग्रेजों ने ले लिया।

1857 की क्रांति ने एक महत्वपूर्ण कार्य किया कि हमने अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली में पले-बढ़े उच्च मध्यवर्ग का पर्दाफाश किया, जिनकी प्रगतिशीलता के चर्चे इतिहास की किताबों में भरे पड़े हैं। वास्तव में पूरे भारतीय उपमहाद्वीप को हिला कर रख देने वाले इस तूफानी संघर्ष से अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली में पला बढ़ा मध्यवर्ग अलग-थलग रहा और जिन्हें नवजागरण का पुरोधा कहा जाता है, उन्होंने तो इस क्रांति की मुखालफत भी की। अपने को प्रगतिशील कहने वाला यह मध्यवर्ग सामाजिक प्रगति के लिए उसी अंग्रेज सरकार से आशा लगाए बैठा था, जो गांव में किसानों का खून चूस रही थी और विद्रोहियों का सर कलम कर रही थी। राजा राममोहन राय और गालिब जैसे लोगों ने 1857 की क्रांति का विरोध किया। गालिब ने तो इस क्रांति में भारतीय सिपाहियों द्वारा किए जा रहे अत्याचारों पर काफी हाय तौबा मचाई। यह अजीब और दिलचस्प है कि भारत के तथाकथित नवजागरण का भारत के प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष से कोई रिश्ता न था।

1857 की क्रांति की असफलता के कई कारण थे। सामंती नेतृत्व एक बड़ा कारण था। इसके अलावा विद्रोह एक बड़े क्षेत्र में होने के बावजूद यह पूरे भारत को अपने आगोश में नहीं ले सका। पूरा दक्षिण भारत, सुदूर पूर्व, सुदूर पश्चिमी भारत से अलग-थलग रहे। युद्ध कौशल का अभाव, आधुनिक हथियारों की कमी ने भी इसमें बड़ी भूमिका निभाई। 1857 के विद्रोही सैनिकों व क्रांतिकारी जनता के पास उनका अपना कोई संगठन नहीं था और ना ही भविष्य की कोई तस्वीर ही थी। वहीं सामंती नेतृत्व देश को पुराने तरीके से ही चलाने की आशा कर रहा था। एक शब्द में कहें तो उपनिवेशवाद के खिलाफ इनकी कोई विचारधारा ना थी। वास्तव में इनके पास उपनिवेश की कोई समझ भी ना थी। इसके अलावा बड़ी और ताकतवर रियासतों और राजाओं जैसे ग्वालियर

का सिंधिया, इंदौर का होलकर, हैदराबाद का निज़ाम, कश्मीर का महाराज, पंजाब सहित दूसरे प्रांतों के अधिकांश राजाओं ने अंग्रेजों का ही साथ दिया। आश्चर्य है कि आज तथाकथित स्वतंत्र भारत में भी इन्हीं के वंशजों में से कई संसद व विधानसभा की सभाओं की शोभा बढ़ा रहे हैं। दूसरी ओर अंग्रेज उपनिवेशवादी विकसित उत्पादक शक्ति का प्रतिनिधित्व करते थे। युद्ध सामग्री व युद्ध कला में वे यहां से काफी आगे थे। जनता के बीच फूट पैदा करने में तो वह नाकाम रहे, लेकिन राजाओं-नवाबों के बीच की फूट का उन्होंने बखूबी इस्तेमाल किया।

इसके अलावा जिस चीज़ ने 1857 के विद्रोह की ताकत को एक हद तक कम कर दिया और जिसका प्रभाव बाद के आंदोलनों पर भी दिखा- वह थी सामंती जाति प्रथा। भारत की दलित जातियों विशेषकर अछूत जातियों से ऊंची जातियां दूरी बनाकर रहती थीं। उनकी छाया तक से बचा जाता था। ऐसे में किसी भी राजनैतिक-सैनिक-आर्थिक मामलों में उनकी भागीदारी प्राय: असंभव थी। कंपनी सेना में भी ऊंची जातियों का ही वर्चस्व था। वस्तुत: सेना ने दलित जातियों की नियुक्ति 1857 के विद्रोह के बहुत बाद जाकर ही शुरू हो सकी। आश्चर्य है कि कार्ल मार्क्स यहां से इतनी दूर, लंदन में बैठकर भी कंपनी सेना की जातीय संरचना पर नज़र रखे हुए थे। कार्ल मार्क्स द्वारा दिए गए आंकड़ों पर नज़र डालें तो बंगाल रेजीमेंट के 80,000 सिपाहियों में 30,000 यूरोपियन सिपाहियों को छोड़कर 28,000 राजपूत 23,000 मुसलमान जाति के सिपाही थे। कमोवेश ऐसी ही संरचना पूरी कंपनी सेना की थी। यहां याद रखा जाना चाहिए कि उपरोक्त निम्न जातियां दलित जातियां नहीं, बल्कि खेतिहर जातियां जैसे यादव कुर्मी आदि हैं। यह भी दिमाग़ में होना चाहिए कि गाय की चर्बी संबंधी धार्मिक पूर्वाग्रह दलित जातियों के लिए कोई मायने नहीं रखती। 1857 के नेताओं ने इन दलित जातियों का विश्वास जीतने, उन्हें इस प्रक्रिया में भागीदार बनाने का कोई प्रयास नहीं किया। वास्तव में यह तभी हो सकता था, जब वे अपने उच्च जाति के अहंकार से बाहर आते और दलित विरोधी प्रथाओं, मान्यताओं को रद्द करते। तभी वे दलित समाज की असीमित ऊर्जा को निर्बन्ध कर पाते। यही कारण था कि दलित वर्ग का नेतृत्व इस विद्रोह को संशय आशंका से देख रहा था। उसे लगता था कि इनकी जीत जाति प्रथा को और मजबूत बनाएगी और उनकी आशंका निराधार नहीं थी। ज्योतिबा फुले जैसे क्रांतिकारी दलित चिंतक ने इसी पृष्ठभूमि में और इन्हीं तर्कों के आधार पर 1857 के इस विद्रोह का विरोध किया था। सच तो यह है कि उस समय के क्रांतिकारी अपने समय के बंदी थे और समय से आगे निकलना उनके लिए संभव न था।

1857 की क्रांति भले ही असफल हो गई, लेकिन इसने अपने सकारात्मक व नकारात्मक अनुभवों से भावी क्रांतिकारियों को अनेकों प्रकार से समृद्ध किया। यह तो कहा ही जा सकता है कि भारतीय समाज के जनवादीकरण की लड़ाई का यह पहला बड़ा प्रयास था। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि 1857 की क्रांति ने कम से कम ईस्ट इंडिया कंपनी का अस्तित्व तो यहां से खत्म ही कर डाला। इस क्रांति के बाद भारत सीधे ब्रिटिश क्राउन के अधीन आ गया।

1857 के समय का उपनिवेशवाद आज साम्राज्यवाद में बदल गया है। 1857 से लेकर आज तक भारतीय सामंतवाद अपने तमाम बदलावों के बावजूद आज भी ग्रामीण जनता का निर्मम शोषण कर रहा है। 1857 की क्रांति के दोनों निशाने उपनिवेशवाद (आज साम्राज्यवाद) और सामंतवाद ज्यों का त्यों कायम है। लेकिन क्रांतिकारियों और जनता के तरकश में आज पहले से कहीं ज्यादा धारदार ज्यादा घातक हथियार हैं। हमारे पास साम्राज्यवाद विरोधी-सामंतवाद विरोधी क्रांतिकारी विचारधारा है। साम्राज्यवाद-सामंतवाद विरोधी क्रांति को नेतृत्व देने के लिए अब तक का सबसे क्रांतिकारी वर्ग मजदूर वर्ग है। आज समाजवाद के रूप में भविष्य के समाज की स्पष्ट रूपरेखा है और देश दुनिया के तमाम जन विद्रोह तथा 1857 की क्रांति के होते हुए नक्सलबाड़ी आंदोलन तक के सशस्त्र संघर्षों का समृद्ध अनुभव व सारसंकलन है। यानि 1857 के दूसरे संस्करण के सभी उपादान मौजूद है। जरूरत सिर्फ उन्हें उपयोग में लाने की है। 1857 का यही सबसे बढ़ा सबक भी है। **(स्रोत : हिंदी पत्रिका 'दस्तक')**

पृष्ठ 26 का शेष

के निर्माण में लोगों की गहरी रुचि और वास्तु के लाभदायक होने की कल्पना के भ्रमित होने वाले लोगों के मन की मर्यादा वस्तुत: इस विरोधी आंदोलन से पूर्णत: समाप्त नहीं हुई है, इसे आज खुले मन से स्वीकारना पड़ेगा। परंतु इसे विचार का पराभव नहीं मानना चाहिए।

(स्रोत : किताब ''अंधविश्वास उन्मूलन : आचार'' (दूसरा भाग), लेखक : डॉ. नरेंद्र दाभोलकर, संपादक : डॉ. सुनील कुमार लवटे, अनुवादक : प्रकाश कांबले)

जादुई करामात या विज्ञान का जादू

कटा हुआ सिर कैसे बोलता है ?

बड़े मेले-ठेले या प्रदर्शनियों में अक्सर यह चम्तकार दिखाया जाता है। ऐसा कारनामा दिखाने वाले जादूगर की बड़ी पूछ होती है। खूब तालियाँ बजती हैं और ऐसा हैरतअंगेज जादू देखकर हम आश्चर्य में पड़ जाते हैं। हम देखते हैं कि हमारे सामने एक छोटी-सी मेज है, जिस पर एक थाल रखा होता है। और थाल में क्या होता है? थाल में होता है-आदमी का जीता जागता सिर, जो पलकें झपकाता है- बोलता है, खाता है। देखने पर लगता है कि मेज के नीचे धड़ छिपाने की कोई जगह तो है नहीं। हम कितना भी आँख फाड़-फाड़कर देखें सिर का कोई धड़ हमें नहीं दिखता। और हमें यकीन हो जाता है कि वहाँ कोई धड़ है ही नहीं। पर एक बात पर यह ध्यान ज़रूर जाता है कि हमें मेज के निकट नहीं आने दिया जाता है। वैसे भी जादूगर जिस मंच पर जादू दिखा रहा होता है, वह हमसे कुछ दूरी पर ही होता है।

चलो जादूगर के इस भेद को खोलते हैं! यदि फिर कभी यह चमत्कार देखने का अवसर मिले तो कागज़ के एक मुड़े-तुड़े टुकड़े को मेज के नीचे वाले खाली स्थान पर फेंक देना। तुम्हें देखकर ताज्जुब होगा कागज़ का टुकड़ा मेज के खाली स्थान से आर पार नहीं निकला, बल्कि किसी चीज से टकराकर गिर गया। किस चीज से टकराया... आईने से। यदि कागज़ का टुकड़ा मेज तक नहीं भी पहुँचे, तो भी आईने के लिए छिपना मुश्किल हो जायेगा, क्योंकि उसमें तुम्हें कागज़ का प्रतिबिम्ब दिखाई दे जायेगा।

वास्तव में होता क्या है! जादूगर मेज के पैरों के बीच दर्पण की दीवार लगा देता है, ताकि उसके नीचे की जगह दूर से खाली दिखे। वह बात का ख्याल रखता है कि कमरे का दृश्य या दर्शक दर्पण में प्रतिबिम्बित न होने पायें। दीवारें और फर्श एक जैसे रंगे हों। साथ ही यह ज़रूरी है कि उन पर कोई नक्काशी या बेलबूटे न हों। सबसे बड़ी बात कि दर्शकों को पर्याप्त दूरी पर रखा जाए।

रहस्य इतना सरल है कि तुम्हें हँसी आ जाये। पर जब तक उसके रहस्य के बारे में पता न चल जाये यह जादू देखकर हम आश्चर्य से दाँतों तले ऊँगली दबा लेते हैं।

कभी-कभी जादू और भी असरदार तरीके से दिखाया जाता है। जादूगर पहले खाली मेज दिखाता है। उसके ऊपर-नीचे कुछ भी नहीं होता। उसके बाद पर्दे के पीछे से वह बन्द डिब्बा लाता है। जादूगर बताता है कि उसमें बिना धड़ के जिन्दा सिर रखा हुआ है, जिसे वह सबके सामने लाना वाला है। पर दरअसल डिब्बे में कुछ भी नहीं होता। अब जादूगर इस डिब्बे को मेज पर रखता है और उसके सामने की दीवार को हटा देता है और... यह क्या! एक बोलता सिर हमारे सामने प्रकट हो जाता है। शायद तुम समझ गये होगे कि मेज के ऊपरी तख्ते पर एक छिपा हुआ ढक्कन-सा होता है, जिसे नीचे बैठा आदमी खिसक कर छेद से अपना सिर ऊपर निकाल लेता है। यह करना तो बहुत आसान होता है, क्योंकि डिब्बे में नीचे से पेंदा नहीं होता। और लो! बस थोड़ा छानबीन करने से कटे सिर की गुत्थी सुलझ गयी।

आवाज़ भी शरारतें करती हैं

जब हम प्याज या मूली-गाजर अथवा सूखी डबल रोटी चबाते हैं, तो हमें काफी ज़ोर का शोर सुनायी देता है। पास बैठा तुम्हारा भाई या पापा-मम्मी भी वही चीज़ खा रहे होते हैं, पर उनसे कोई खास शोर नहीं सुनायी देता। ऐसा क्यों होता है।

बात यह है कि यह शोर सिर्फ हमारे कानों में होता है और पड़ोस में बैठे लोगों को परेशान नहीं करता। खोपड़ी की हड्डी या कोई भी ठोस सुनम्य पिण्ड ध्वनि का बहुत अच्छा चालक होता है और ऐसे घने माध्यम से ध्वनि अत्यधिक तेज़ लगती है। हवा के माध्यम से जब कोई ध्वनि कान तक पहुँचती है तो वह हल्के शोर जैसी प्रतीत होती है। पर वही ध्वनि जब खोपड़ी के ठोस रेशों से होकर हमारी श्रवण संवेदनाओं को ले जाने वाली शिराओं तक पहुँचती है, तो वह तेज़ शोर से बदल जाती है।

आवाज़ कैसी शरारतें करते हैं और कैसा भ्रम पैदा करते हैं, इससे सम्बन्धित एक दिलचस्प घटना का वर्णन अमरीकी वैज्ञानिक विलियम जेम्स ने किया है - **शेष पृष्ठ 33 पर**

मां

–मुनव्वर राना (1952–2024)

मैंने आंखें खोलीं, तो आपने पिता के हाथों में ट्रक की स्टेयरिंग देखी। वह उन्नाव की ट्रांसपोर्ट कंपनी में काम करते थे। एक बार जाते, तो चार-पांच दिन लौटने में लग जाते। पिता नहीं आते, तो अक्सर घर में चूल्हा नहीं जलता था। हमारे जिस्म पर कपड़े हों न हों, दरवाजे पर मां टाट का मोटा पर्दा जरूर डाले रहती थी। मां के लिए यह पर्दा तो होता ही था, हमारी गरीबी भी ढकी रहती थी।

बचपन में हमारे जिस्म पर कपड़े हों न हों, मां दरवाजे पर टाट का मोटा पर्दा जरूर डाले रहतीं। यह पर्दा तो होता ही था, हमारी गरीबी भी ढकी रहती थी।

जब भी मैं कभी मां से दूर होता, तो वह परेशान हो जातीं, रात-रात भर सोती नहीं थीं। ऐसा इस कारण था कि मुझे नींद में चलने की आदत थी। मेरे ननिहाल के पास कुआं था। मैं वहां जाता, तो वह अपने घर के पास के कुएं के पास बैठी रहतीं। उन्हें लगता था कि पानी का पानी से रिश्ता होता है और वह मुझे नींद में कुएं में गिरने से बचा लेगा।

मैंने मां पर बहुत लिखा, लेकिन मां ने मुझे कभी नहीं सुना था। एक बार मेरे पाकिस्तान जाने का कार्यक्रम बना, तो मेरे दोस्त महमूद गोरी ने कहा कि हम एक अलग ढंग का मुशायरा करना चाहते हैं, जिसमें आप मां पर शायरी सुनाएंगे और इस मुशायरे की अध्यक्षता आपकी मां करेंगी। मां ने मुझे डेढ घंटे तक सुना, लेकिन पर्दे में। मैंने भी रचनाएं पढ़ते हुए एक बार भी उनकी ओर नहीं देखा, क्योंकि मुझे मालूम था कि अगर एक बार भी उधर-नज़र की, तो आंखें भर आएंगी। पर्दे में रहने की उनकी आदत थी। मरने के पहले भी यह अस्पताल में पर्दा ढूंढती रहतीं। कई बार किसी डॉक्टर ने यह कहकर फोटो लेना चाहा कि आप मुनव्वर राना की माँ है, तो बोलीं कि मैं पर्दे से बाहर कैसे आ सकती हूं ?

जब ग़ज़ल में सिर्फ हुस्न, इश्क की बातें हो रही थीं, मैं उसमें रिश्ते बोने लगा। हुस्न, जुल्फों और होठों से गजल को घसीटकर में मां तक ले आया। मां पर लिखा और खूब लिखा। ''**किसी को घर मिला हिस्से में या कोई दुकां आई। मैं घर में सब से छोटा था मेरे हिस्मे में मां आई।**'' कुछ लोगों ने एतराज जताया। कहा : गज़ल तो महबूबा के लिए होती है। तुम मां पर क्यों लिख रहे हो ? मेरा जवाब था : क्यों... ? आज समाज में रिश्ते दरक रहे हैं। अगर मेरी ग़ज़लों से देश का दस फीसदी युवा भी अपने माता-पिता से मोहब्बत करने लगे, तो समझूंगा मेरा लिखना सफल हो गया। अब शायरी से रिश्तों की मासूमियत खत्म हो रही है। वजह यह कि आज के शायर जल्द फेमस होना चाहते हैं। यही कारण है कि आज वे गजल में धर्म का बेजा इस्तेमाल कर रहे हैं, जिससे स्तर गिर रहा है। मैं मरने से पहले वही हिंदुस्तान देखना चाहूंगा, जो मैंने आंखें खुलने और होश संभालने पर रायबरेली में देखा था।

हमसे मोहब्बत करने वाले रोते ही रह जाएंगे।
हम जो किसी दिन सोए तो फिर सोते ही रह जाएंगे।

(अमर उजाला) (16-01-2024)

पृष्ठ 30 का शेष

''एक बार काफ़ी रात को मैं बैठा पढ़ रहा था। अचानक ऊपर तल्ले से ज़ोरों का एक शोर सुनायी दिया। शोर तुरन्त बन्द हो गया और एक मिनट बाद फिर से शुरू हो गया। मैं बाहर हॉल में निकल आया और ध्यान से सुनने लगा, पर कुछ सुनायी नहीं दिया। पर जैसे ही किताब खोली, शोर फिर से शुरू हो गया। शोर काफ़ी ज़ोरों का और भयावना था। जैसे कोई आँधी चलने वाली हो। वह हर तरफ़ से आ रहा था। मैं काफ़ी घबरा गया। और फिर से हॉल में निकल आया। शोर फिर गायब हो गया।''

अपने कमरे में दूसरी बार लौटने पर मैंने अचानक देखा कि शोर फ़र्श पर सोये छोटे-से कुत्ते की खर्राहट के कारण हो रहा है!

दिलचस्प बात तो यह है कि शोर का वास्तविक कारण जान लेने के बाद मैं लाख कोशिश करके भी उस पुराणे भ्रम को दुबारा नहीं पा सका।

शायद शरारती आवाज़ों ने ऐसा ही कोई भ्रम पैदा करके कभी तुम्हें भी छकाया हो!

(स्रोत : बाल पत्रिका ''**कोंपल**'')

करिअर के लिए बच्चों को अंधकार में मत धकेलिए

- रोहित कौशिक

बच्चों के भविष्य की दिशा निर्धारित करने में माता-पिता का बहुत बड़ा योगदान होता है। जब माता-पिता बच्चों के भविष्य की योजनाएं बनाने में जरूरत से ज्यादा दिमाग लगाते हैं तो बच्चों के भविष्य पर ही प्रश्नचिन्ह लग जाता है।

जिन बच्चों के लिए हम योजनाएं बना रहे हैं, अगर उन बच्चों को ही उनके बेहतर भविष्य के लिए की जा रही चर्चा में शामिल नहीं किया जाता है तो एक तरह से यह उनके साथ नाइंसाफी होती है। बाद में इस नाइंसाफी का खमियाजा बच्चों के साथ-साथ पूरे परिवार को उठाना पड़ता है।

व्यावहारिकता तो यह है कि भविष्य के लिए योजना बनाते समय बच्चों को भी इस चर्चा में शामिल करना चाहिए। इस प्रक्रिया से उनके अंदर आत्मविश्वास पैदा करना होगा। और वे बेहतर ढंग से इन योजनाओं को क्रियान्वित करने का प्रयास करेंगे।

माता-पिता द्वारा बच्चों से संवाद स्थापित किया जाएगा तो बच्चों पर करिअर का दबाव कम होगा और उनमें तनाव सहने की शक्ति भी बढ़ जाएगी। इससे प्रतिस्पर्धा में तनाव सहने के बाद भी उनके अंदर निराशा का भाव जन्म नहीं लेगा और वे एक अंधेरी गुफा में प्रवेश करने से बच जाएंगे। आज इस बात पर सबसे ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है कि कहीं माता-पिता अपने बच्चों को करिअर की चमचमाती रोशनी दिखाने के चक्कर में अंधेरे की ग्रिफ्त में तो नहीं सौंप रहे हैं।

एक बार बच्चे अंधेरे की गिरफ्त में आ जाते हैं तो उससे बाहर निकलना बहुत मुश्किल होता है। यह दुखांतक है कि इस दौर की गलाकाट प्रतिस्पर्धा बच्चों को अंधेरे की तरफ धकेल रही है। शिक्षा का मुख्य काम बच्चों को अंधेरे से प्रकाश की ओर ले जाना है लेकिन इस दौर में शिक्षा और करिअर का दबाव बच्चों को प्रकाश से अंधेरे की ओर ले जा रहा है। दुखांतक यह है कि गंभीरता के साथ बच्चों के इस दबाव को कम करने का प्रयास नहीं किया जा रहा है। यही कारण है कि धीरे-धीरे बच्चे अवसाद की गिरफ्त में आ रहे हैं। फलस्वरूप बच्चों द्वारा आत्महत्या करने के मामले बढ़ते जा रहे हैं। कभी-कभी बच्चे डर कर भी आत्महत्या कर लेते हैं।

सवाल यह है कि बच्चों में डर क्यों पैदा होता है? बच्चों के दिल से डर खत्म करने की कोशिश ईमानदारी के साथ क्यों नहीं हो रही है? क्यों प्रतिस्पर्धा बच्चों को पलायनवादी बना रही है? निश्चित रूप से इन सभी प्रश्नों के उत्तर खोजने की कोशिश हो रही है लेकिन उत्तर खोजने की प्रक्रिया में इन प्रश्नों के अन्तरसंबंधों पर विचार नहीं किया जा रहा है। ये सभी प्रश्न किसी न किसी रूप में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। बच्चे में डर तभी पैदा होता है जब वे यह सोचने लगते हैं कि अगर हम असफल हो गए तो क्या होगा, अगर हम असफलता की बात अपने मन से निकाल दें या असफलता घर और समाज में सहज रूप से स्वीकृत हो तो डर स्वत: ही खत्म हो जाएगा।

जब बच्चे अवसाद में आ जाते हैं या आत्महत्या कर लेते हैं तब हमें अपनी गल्ती का अहसास होता है लेकिन उस समय तक बहुत देर हो चुकी होती है। भविष्य में प्रतिस्पर्धा कम नहीं होगी, बल्कि निरन्तर बढ़ेगी। ऐसी स्थिति में हमें बच्चों के अंदर से निराशा दूर करने और उनका नैतिक बल बढ़ाने के प्रयत्न करने होंगे। व्यवहारिकता से दूर होकर हम ऐसे प्रयास नहीं कर सकते। व्यावहारिकता यही है कि हम बच्चों की प्रकृति और प्रवृत्ति समझने की कोशिश करें और उनकी प्रकृति प्रवृति के अनुसार भविष्य की दिशा निर्धारित करें। एक बच्चा दूसरे बच्चे से कुछ अलग और खास होता है। हमें यह समझने की कोशिश करनी होगी कि हमारे बच्चे में अलग और खास क्या है? विडम्बना यह है कि हम यह सब समझने की कोशिश नहीं करते हैं और बच्चे को डांटना-डपटना शुरू कर देते हैं। यहीं से उनके अंदर हीन भावना पैदा होती है।

हम बच्चों से अक्सर यह शिकायत करते हैं कि वे

शेष पृष्ठ 35 पर

हिंसक श्वान

मनुष्य और कुत्तों के बीच रिश्ते प्राय: दोस्ती के रहे हैं। मगर पिछले कुछ वर्षों में जिस तरह कुत्तों के हमले की घटनाएँ और रैबीज के मामले बढ़ रहे हैं, उसे लेकर स्वाभाविक ही चिंता पैदा हो गई है। कुछ साल पहले दिल्ली के जामिया इलाके में कुछ छोटे बच्चों की कुत्तों के नोच-नोच कर मार डालने की घटनाएँ प्रकाश में आई थीं। उसके बाद देश के विभिन्न इलाकों से ऐसी खबरें आती रहीं। कुत्तों के काटने से फैलने वाले रैबीज से दर्दनाक मौतों के भी कई वीडियो प्रसारित हुए। अभी दिल्ली में एक मां जब अपने दो साल के बच्चे को गोद में लेकर जा रही थी, उस पर एक कुत्ते ने हमला कर दिया। किसी तरह उसने बच्चे को बचाया, तो दूसरे कुत्ते ने हमला कर दिया, जिसमें मां और बच्चा दोनों घायल हो गए। पुलिस ने इस मामले का संज्ञान लिया है। मगर सवाल है कि आखिर आवारा कुत्तों से लोगों को सुरक्षा मुहैया कराने की जिम्मेदारी कौन लेगा। अनेक अध्ययनों से पता चला है कि कुत्तों में आक्रामकता बढ़ रही है और वे अब मनुष्य पर हमले अधिक करने लगे हैं। खासकर बच्चे और बूढ़े उनके हमले का आसान शिकार बनते हैं। ऐसे में यह स्थिति और चिंताजनक हो गई है।

कुत्तों के हमले से बचाव के लिए कानून बनाया गया कि सरकार उनका बंध्याकरण कराएगी, ताकि उनकी वंश वृद्धि न हो सके। उन्हें टीके लगाए जाएंगे, ताकि उनके काटने पर रैबीज न होने पाए। मगर इस मामले में शिथिलता ही देखी जाती है। महानगरों में शिकायत करने पर कुत्ते पकड़ने वाली गाड़ी तो आ जाती है, मगर अक्सर उसे देख कर कुत्ते भाग जाते हैं और उन्हें न तो रैबीजरोधी टीके लगाए जा पाते हैं और न बंध्याकरण हो पाता है। इसकी वजह से उनकी तादाद पर काबू पाना कठिन बना हुआ है। हालांकि कई आम लोग भी इस मामले में अपनी नागरिक जिम्मेदारी नहीं समझते। वे श्वान-प्रेम में उन्हें भोजन आदि देते रहते हैं, कई लोग तो उनके बंध्याकरण आदि का विरोध भी करते देखे जाते हैं। कुछ संगठन पशु क्रूरता अधिनियम के हवाले से आवारा कुत्तों को संरक्षण प्रदान करते हैं। कुत्तों के प्रति मानवीय संवेदना अच्छी बात है, मगर उनकी वजह से अगर लोगों का राह चलना मुश्किल होने लगे, उनके काटने से किसी की जान पर बन आए, तो इसे किसी भी रूप में ठीक नहीं कहा जा सकता। दूसरे अनेक देशों में आवारा कुत्ते इस तरह परेशानी का सबब नहीं बनते, इसलिए कि उनका नियमित टीकाकरण किया जाता है। अगर वे किन्हीं स्थितियों में काट भी लें, तो रैबीज का खतरा नहीं रहता।

हालांकि पालतू कुत्तों की वजह से भी कई बार लोगों के लिए खतरा पैदा हो जाता है। कई मालिक अपने कुत्तों को बाहर ले जाकर लापरवाही से छोड़ देते हैं और वे किसी पर आक्रमण कर देते हैं। ऐसे अनेक मामले प्रकाश में आ चुके हैं, जब कुत्तों की वजह से पड़ोसियों में मारपीट की नौबत आई और हत्याएं तक हो गईं। दिल्ली, मुंबई आदि शहरों में सरकार को नियम बनाना पड़ा कि कुछ विशेष प्रजाति के कुत्ते पालने वालों को उनका पंजीकरण कराना होगा। इस तरह पालतू कुत्तों पर तो नजर रखी जा सकती है, मगर बिना टीका वाले आक्रामक आवारा कुत्तों पर नजर रखने की जिम्मेदारी आखिर कौन निभाएगा। कायदे से नगर पालिकाओं को समय-समय पर इसके लिए विशेष अभियान चलाना चाहिए। उन्हें नागरिक सुरक्षा का अपना दायित्व कब समझ आएगा।

(जनसत्ता, नई दिल्ली का संपादकीय)

(26-01-2024)

पृष्ठ 34 का शेष

माता-पिता को समझ नहीं पा रहे हैं लेकिन माता-पिता भी गंभीरता के साथ बच्चों को समझने की कोशिश कहाँ करते हैं। बच्चों में अवसाद और उनकी आत्महत्या हमारी पूरी व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह है। इस प्रश्नचिन्ह को हटाने में पूरे समाज का सहयोग अपेक्षित है। करीअर के लिए बच्चों की बलि देकर अपने और बच्चों के भविष्य को अंधकार में धकेलना समझदारी नहीं है।

स्रोत : जनसत्ता (11 मार्च 2024)

पृथ्वी का जन्म कैसे हुआ!

पृथ्वी का जन्म कैसे हुआ इसके बारे में कई सारे वैज्ञानिकों ने अलग-अलग मत रखे। कुछ ने कहा कि पूरे सौर जगत का जन्म एक आदिम नीहारिका से हुआ। और इस आदिम नीहारिका का जन्म कैसे हुआ! किसी समय आकाश में एक नक्षत्र में विस्फोट हुआ जिससे यह फटकर खण्ड़-खण्ड हो गया और इसने एक बहुत विशाल जलते हुए गोले का रूप ले लिया। इसी गोले से हमारे सौर जगत का जन्म हुआ। लेकिन कुछ दूसरे वैज्ञानिकों ने बताया कि आकाश में सूर्य की तरह तेज़ रफ्तार से गति करने वाले और भी कई तारे हैं जो आपस में टकराते तो नहीं लेकिन उनमें कभी टक्कर हो ही नहीं सकता, ऐसा भी नहीं है। ऐसा ही एक तारा दौड़ते-दौड़ते सूर्य के बहुत निकट आ गया और एक तरह से टक्कर भी हो गई। तारे के आकर्षण से सूर्य के जलते हुए गैस के गोले में ज्वार की जबरदस्त लहर उठी जिससे सूर्य का एक टुकड़ा टूट कर छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गया। यही टूटे हुए गैस के टुकड़े सूर्य के चारों और घूमने लगे और फिर कई टुकड़े मिलकर ग्रह बने। कुछ वैज्ञानिकों ने इसमें अपनी खोज के आधार पर बदलाव किया और यह कहा कि कई सौ करोड़ साल पहले कोई तारा सूर्य के इतने करीब तो आया कि लगभग टकराते-टकराते बचा लेकिन उससे ज्वार नहीं उठा बल्कि सूर्य के निकट आने वाले तारे के आकर्षण से सूर्य से एक टुकड़ा छिटक कर उससे अलग हो गया और इसे से हमारे ग्रहों का जन्म हुआ। कुछ वैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि सूर्य नाम का तारा गति करते हुए खुद ही नीहारिका के बीच में जा पड़ा और उसे फोड़कर निकलते समय उसका एक टुकड़ा भी साथ लेता गया। इस टुकड़े से ही सौर जगत और पृथ्वी सहित हमारे ग्रहों का जन्म हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि पृथ्वी की जन्म-कथा के बारे में अलग-अलग राय होते हुए भी वैज्ञानिकों के बीच इस एक चीज के बारे में कोई मतभेद न था कि पृथ्वी का जन्म सूर्य से ही हुआ।

आखिर वैज्ञानिकों की यह राय क्यों बनी कि सूर्य से ही पृथ्वी का जन्म हुआ है। उनका कहना है सूर्य और पृथ्वी में कई समानताएं हैं। यह तो सभी मानते हैं कि पृथ्वी अपने जन्म के समय सूर्य की तरह ही जलता गैस का गोला थी जो कई सौ वर्षों के दौरान धीरे-धीरे ठंडी हुई। ठंडी होने की प्रक्रिया में पहले यह गैस से तरल बनी और फिर ठोस बनने की शुरूआत इसकी सतह पर पपड़ी जमने से हुई। ठीक वैसे ही जैसे कि ठंडा होते गाढ़े दूध पर मोटी साढ़ी जमती है। सूर्य और पृथ्वी के बीच समानता बताने के लिए वैज्ञानिकों ने ये तर्क दिये।

उन्होंने कहा कि सूर्य और पृथ्वी दोनों ही लट्टू की तरह घूमते हैं। लट्टू की तरह नोक पर स्थिर ये दोनों ही अपने-अपने स्थान पर घूमते हैं। इनका घूमना एक ही दिशा में होता है। वह दिशा कौन सी है - घड़ी की सूई जिस दिशा में घूमती है वह दिशा या उसकी विपरीत दिशा? यह बहुत दिलचस्प है कि सूर्य और पृथ्वी दोनों ही अपने-अपने स्थान पर घड़ी की सूई के घूमने की विपरीत दिशा में घूम रहे हैं। पृथ्वी सूर्य के चारों तरफ चक्कर काटती है यह जानकारी अब नयी नहीं है लेकिन चक्कर काटते समय पृथ्वी पश्चिम से पूर्व दिशा में ही दौड़ती है यानी सूई जिस और घूमती है उसकी विपरीत दिशा में।

सूर्य की परिक्रमा केवल पृथ्वी ही नहीं बल्कि सूर्य के अन्य आठों ग्रह भी उसकी परिक्रमा करते हैं और उनकी गति की दिशा भी पश्चिम से पूर्व दिशा की तरफ यानी घड़ी की सूई घूमने की विपरीत दिशा में होती है। इसके साथ-साथ प्रत्येक ग्रह लट्टू की तरह अपने-अपने स्थान पर घूमता है और इनमें से प्रत्येक की दिशा भी सूई घूमने की दिशा के विपरीत होती है। हमें सूर्य और पृथ्वी सहित सभी ग्रहों की गति में आश्चर्यजनक समानता दिखाई देती है।

वैज्ञानिकों ने एक और मजेदार बात बताई कि ये सभी ग्रह सूर्य के चारों और एक ही सतह पर परिक्रमा कर रहे हैं। मान लिया जाये कि आकाश एक तना हुआ चादर है तो उस चादर की सतह पर बीच में सूर्य है और पृथ्वी उसी चादर की सतह पर सूर्य के चारों और परिक्रमा लगा रही है और दूसरे ग्रह भी पृथ्वी की ही तरह चादर की सतह पर सूर्य के चारों और चक्कर काटते हैं।

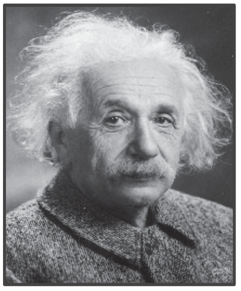
शेष पृष्ठ 42 पर

आइंस्टाइन के वैज्ञानिक कार्य का दार्शनिक आधार

– सौमित्रो बैनर्जी

हम प्राय: ऐसा सोचते हैं कि वैज्ञानिक असाधारण बुद्धि से प्रकृति के रहस्यों को हल करते हैं, यह उन की असाधारण बुद्धिमता का परिणाम ही होता है कि वे गणितीय उलझनों की अनजान राहों में घुस कर रास्ता बनाते हैं। महान वैज्ञानिकों के बारे में अधिकतर व्यक्ति ऐसा ही सोचते हैं।

इसलिए यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि देखें तो आइन्स्टाइन के दिमाग में ऐसा क्या था? आइन्स्टाइन ने स्वयं 1955 में यह कह दिया था कि मरने के बाद उन का मस्तिष्क खोज के लिए उपलब्ध रहेगा।



पैथॉलॉजिस्ट थामस हार्वे (Thomas Harvey) ने इस दिमाग को सुरक्षित रखा और इस के अलग अलग भाग और सैम्पल लिए। मस्तिष्क शरीर विज्ञानियों ने इस के आकार, भार, रूप और सलवटों पर विस्तृत परीक्षण किए, यह देखने के लिए कि भला यह मस्तिष्क विशेष अन्य साधारण मस्तिष्कों से किस प्रकार भिन्न है।

आश्चर्य! मस्तिष्क शरीर विज्ञानियों को कोई ऐसा पहलू नहीं मिला जिस से लगे कि यह मस्तिष्क किसी भी अर्थ में असाधारण है। सभी कुछ तो साधारण मस्तिष्कों जैसा था।

लेकिन यह कैसे संभव हो सकता है?

आखिर यह वह दिमाग है जिस ने 26 वर्ष की आयु में भौतिकी के क्षेत्र में पांच मौलिक और रास्ता दिखाने वाले क्षेत्रों में महान योगदान किया है। उस समय के महान दिमाग कई समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किये हुए थे। आइन्स्टाइन का दिमाग इन समस्याओं से अप्रत्याशित कोणों से जूझा। और ऐसा करते हुए उस ने ऐसे सरल-सीधे तर्क दिए जिन के बारे में तब से पहले कोई सोच भी न पाया था। आज भी यह कहा जाता है कि भौतिक का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं, जिस पर इस दिमाग ने अपनी छाप न छोड़ी हो।

यह भी सही है कि किसी भी युग में महान दिमागों की कोई कमी नहीं रही। आइन्स्टाइन के जीवन काल में भी बहुत से वैज्ञानिक हुए हैं जिन्होंने अपने-अपने क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण योगदान किया। माक, पॉयनकेयर, मिन्कॉस्की, प्लांक, बोह्र, हाइज़नबर्ग, श्रोडिंगर, फ़ियनमन और गानो कोई कम शानदार वैज्ञानिक नहीं थे। फिर भी यदि हम भौतिकी का फ़लक देखें तो पाएंगे कि पहाड़ियों और पर्वतों के बीच एक ऊँचा माउंट एवरेस्ट खड़ा है। आइन्स्टाइन, महामानवों के बीच एक महामानव है। दूसरे विलक्षण प्रतिभाशाली व्यक्ति केवल अपने क्षेत्र तक ही सीमित थे। आइन्स्टाइन सम्पूर्ण पदार्थीय विश्व को देख रहे थे और इस के बारे में हमारे पास उपलब्ध ज्ञान की मौलिक समस्याओं को देख पा रहे थे। इन्हें हल करने का रास्ता दिखा रहे थे। क्या इस बात पर विश्वास किया जा सकता है कि ऐसा व्यक्ति एक अलग प्रकार का दिमाग ले कर पैदा नहीं हुआ था ?

हाँ, विज्ञान ऐसा ही कहता है।

नहीं तो यह कैसे हो सकता है कि किसी ने भी इस प्रतिभा के बाल्याकल में कुछ भी असाधारण नहीं देखा? वे अपने विद्यार्थी जीवन में कभी भी प्रथम या द्वितीय नहीं रहे। कई साक्षात्कारों में असफल रहे, कुछ वर्ष बेरोज़गार रहे। किसी तरह से एक पेटेंट कार्यालय में क्लर्क की नौकरी मिली। वह भी उन के पिता के किसी दोस्त की सिफ़ारिश से। वे जीनियस पैदा हुए होते तो बचपन में ही इस के लक्षण दिखाई देने चाहिएं थे।

असाधारण व्यक्तियों में जो इस प्रकार की बात ढूंढना चाहते हैं, वे एक असली बात भूल जाते हैं - कि मनुष्य एक प्रक्रिया का परिणाम होता है। हर मनुष्य का जीवन, उस के विचार एवं योग्यताएं इस बात से निर्धारित होते हैं कि वह स्वयं को किस प्रक्रिया में से गुज़ारता है। यही कारण है कि आइन्स्टाइन के दिमाग में ''विशेष'' परतें खोजना बेकार है। एक महान वैज्ञानिक के बनने को समझने के लिए हमें वह प्रक्रिया समझनी पड़ेगी जिस में से गुजर कर उन्होंने स्वयं को बनाया।

आरम्भिक वर्ष

यदि आइन्स्टाइन के जीवन को इस कोण से देखें तो हमें कुछ पहलुओं पर ध्यान देना होगा। इन में सर्वप्रथम है कि उन का शैक्षिक जीवन कोई विशेष नहीं था। कई वर्षों बाद जब वे एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक हो चुके थे तो एक रिपोर्टर ने इस बारे में उन से पूछा था। आइन्स्टाइन ने उत्तर दिया – ''जब तक मैं कई कोणों से गंभीर प्रश्न करने के बाद स्वयं को सन्तुष्ट नहीं कर लेता, मैं किसी बात को स्वीकार नहीं करता।'' लेकिन उस के स्कूली वर्षों में जर्मनी में शिक्षा व्यवस्था सेना की आदेशात्मक व्यवस्था जैसी थी। जो कुछ पुस्तकों में लिखा होता था, मानना होता था – प्रश्न नहीं हो सकते थे। वही पढ़ो, याद करो और परीक्षा में लिख दो। आइन्स्टाइन हर बात पर प्रश्न उठाता और बिना आलोचनात्मक निर्णयों के, पढ़ाए हुए को नहीं मानता था। इसी कारण से अध्यापक भी इस विद्यार्थी को पसन्द नहीं करते थे। वह भी इस किताबी ज्ञान को पसन्द नहीं करता था।

आइन्स्टाइन ने अंकों ओर ग्रेडों को महत्व नहीं दिया, नहीं तो इतना महान वैज्ञानिक पैदा नहीं होना था।

कॉलेज और उत्तर कॉलेज वर्षों में प्रवेश करते ही, उन्होंने एक ओर महत्त्वपूर्ण कदम उठाया। उन्होंने वैज्ञानिक अनुसंधानों के लिए जान-बूझ कर एक विशेष दृष्टिकोण चुना। आओ जानें, इस का अर्थ क्या है।

हम सभी अपने विचारों के तत्त्व अपने आस-पास के समाज से ग्रहण करते हैं। सही, ग़लत, अच्छा, बुरा आदि सभी विचार इसी प्रकार जन्म लेते हैं। हम अपने मित्रों, सम्बन्धियों एवं अजनबियों के साथ बातचीत द्वारा, पुस्तकें पढ़ने, समाचार पत्रों को पढ़ने, गीत सुनने, फ़िल्में देखने आदि के माध्यम से विभिन्न विचारों के सम्पर्क में आते हैं। समाज में व्याप्त इस प्रकार के विचारों से अन्त: क्रियाएं करते हुए अपने दिमाग को आकार देते हैं। इन विभिन्न प्रकार के विचारों के विरोधाभासों और उन के क्रॉस परीक्षण के बाद हम निर्णय पर पहुँचते हैं कि हम किस विचार को स्वीकारें और किसे छोड़ें। इस तरह से समाज में हम अपना स्थान तय करते हैं। इस प्रकार की मनोवैज्ञानिक संकल्पना कहती है कि किसी व्यक्ति की सोच सामाजिक सोच की परसॉनिफ़िकेशन होती है।

परन्तु अधिकांश व्यक्तियों में यह अचेतन ही होता रहता है। जब कोई व्यक्ति यह कहता है कि यह मेरी अपनी सोच है, मेरा अपना मत है, मेरा व्यक्तिगत मामला है तो उस समय भी यह समाज में विद्यमान एक प्रवाहित विचार की ही तरफदारी कर रहा होता है। बस, वह तो केवल इसे अपने ढंग से व्यक्त कर रहा होता है। वास्तव में ये विचार उस ने अपने समाज से ही ग्रहण किए होते हैं। इसलिए अधिकांश महान व्यक्ति अपने व्यक्तिगत विचार पर जागरूक ढंग से सोचते-समझते हुए पहुँचते हैं, समाज में विद्यमान अच्छा, बुरा, ग़लत, सही, भ्रमित आदि में से सोच-समझ कर एक सोच को स्वीकार करते हैं। फिर वे उसी प्रकार सोचने का अभ्यास करते हैं और अपनी आदत बना लेते हैं। वे समाज में व्याप्त ग़लत विचारों को समझने के भी प्रयास करते हैं और सचेत हो कर इन्हें अपनी आदत में से निकालने की कोशिश करते हैं। इन प्रक्रियाओं से गुज़रे बिना महानता की तरफ जाने का कोई और शॉर्टकट नहीं है। वैज्ञानिक भी इसी प्रकार बनते हैं।

वैज्ञानिक शोध में यह किस प्रकार घटित होता है्? एक वैज्ञानिक अपने अनुसंधान के दौरान क्या करता है?। वह वास्तव में इस पदार्थीय विश्व के एक खास पहलू के बारे में प्रश्न उठाता रहता है और उत्तर पाना चाहता है। वह उन की सत्यता को ढूंढता है। परन्तु किसी प्रश्न के उत्तर पाने के विभिन्न दृष्टिकोण हैं। बात यह होती है कि सही उत्तर किस तरह मिलेगा। हर वैज्ञानिक को इन दृष्टिकोणों में से अपना एक मत बनाना पड़ता है। अपनी एक राय बनाने के बाद वह एक सुपरिभाषित विधि से आगे बढ़ता है। विज्ञान में काम करने वाले अधिकतर लोग इसी प्रकार काम करते हैं। परन्तु वे इस बारे में सचेत नहीं होते कि समाज में मौजूद अन्तर्द्वन्द्वों में से ही वे एक रास्ता चुन रहे हैं। यदि वे ग़लत रास्ता चुन लेते हैं तो स्वाभाविक है, उनका शोध कार्यक्रम उसी अनुसार आगे बढ़ेगा।

आइन्स्टाइन ने अपने आरम्भिक वर्षों में ऐसा ही किया। उन्होंने समाज में प्रवाहित इन्हीं विचारधारओं को समझा, सोच-समझ कर ग़लत विचार प्रवाहों को त्यागा। ठीक विचारों के प्रवाह को अपनी आदत बनाया। एक बार जब उन्होंने वैज्ञानिक सोच प्रक्रिया के बारे में अपना निर्णय ले लिया, तो अपने पूरे वैज्ञानिक जीवन में उस पर कायम रहें।

यह महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिए आइन्स्टाइन ने अपने

दो मित्रों मॉरिस सोलोविन (Maurice Solovine) और कॉनरैड हैबिक्ट (Conrad Habicht) की सहायता से 'ओलिम्पिया अकैडमी' नाम का क्लब बनाया। इस क्लब में हर सप्ताह विज्ञान में दर्शन सम्बन्धी दृष्टिकोणों पर चर्चा होती थी। सोलोविन के एक संस्मरण से यह ज्ञात हुआ है कि वे जॉन स्टुअर्ट मिल की A System of Logic, रिचर्ड एवेनेरियस (Richard Avenarius) की Critique of Pure Experience, डेविड हयूम (David Hume) की A Treatise of Human Nature, माक (Mack) को (The Analysis of Sensations and Relation of the Physical to the Psychical, कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) की The Grammar of Science और हेनरी पॉय्नकेयर (Henri Pioncare) की Science and Hypothesis जैसी पुस्तकों का सामूहिक अध्ययन किया करते थे। वे इन दार्शनिक विचारों का क्रॉस अध्ययन करते थे। साथ ही दर्शनशास्त्र की रोशनी में विज्ञान के क्षेत्र में बनती हुई नयी स्थितियों की चर्चा करते थे। इन बहसों के द्वारा ही आइन्स्टाइन दर्शन में प्रचलित उन विचारों के सम्पर्क में आए, जो वैज्ञानिक कार्य के लिए बहुत ज़रूरी है। इस से उन्हें अपना दार्शनिक मत बनाने में मदद मिली।

दार्शनिक विचारों से आइन्स्टाइन का यह पहला परिचय नही था। 16 वर्ष की आयु में ही वे इमैनुअल कांट (Immanuel Kant) की दार्शनिक कृतियाँ (Critque of Pure Reason, Critique of Practical Reason) और Critique of Judgement पढ़ चुके थे। जब वे कॉलेज और विश्वविद्यालय में पढ़ रहे थे, उन्होंने माक की दार्शनिक विचारों वाली विज्ञान की पुस्तकें जैसे Mechanics, Principles of the Theory of Heat आदि पढ़नी जारी रखीं। उन्होंने फ़र्डिनन्ड रोज़नबर्गर (Ferdinand Rosenberger) की Issac Newton and His Physcial Principles और फ्रीडरिक एल्बर्ट लैंज (Friendrich Albert Lange) की History of Materialism पढ़ी। उस समय विश्वविद्यालय में विज्ञान पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए दर्शन पढ़ना ज़रूरी था। 1897 की सर्दियों में आइन्स्टाइन ने विश्वविद्यालिय में प्रवेश लिया और Theory of Scientific Thought के कोर्स में दाखिला लिया। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी वैज्ञानिक तलाश में उन्होंने किस पक्ष का अनुसरण करना है, यह ओलिम्पया अकैडमी के दिनों में उन्होंने तय कर लिया था।

प्रचलित दर्शन धाराएं

आइन्स्टाइन ने विज्ञान का कौन सा पक्ष चुना, यह समझने के लिए यह जानना ज़रूरी है कि उन दिनों विज्ञान की दुनियां में कौन से विचार वैज्ञानिकों की बिरादरी को प्रभावित कर रहे थे।

विदित है कि प्राचीन मानव की सोच प्रकृति के अनुकूल थी, उसी के मुताबिक चलती थी। अपने भौतिक संसार से सन्दर्भित हुए बिना सोचना-विचारना उस के लिए सम्भव नहीं था। फिर समाज के विकास की प्रक्रिया में इन्सान का दार्शनिक चिन्तन दो धाराओं में बँट गया- आदर्शवादी एवं पदार्थवादी दर्शन की धाराएं। मध्ययुगीन समयकाल में आदर्शवाद धारा का दबदबा रहा। आधुनिक विज्ञान पद्धति के आगमन से पहले किसी भी मसले पर सत्य तक पहुंचने के लिए दोनों ही धाराएं चिन्तन-मनन के स्तर पर तथा व्यक्तिगत स्तर पर अहसास एवं बोध का सहारा लेती थीं। गहन चिन्तन के आधार पर एक ऐसी अनुभूति एवं बोध तक पहुंचा जाता था जो उस मसले के सन्दर्भ में सत्य कहलाता था। कोई दूसरा व्यक्ति उसी प्रश्न पर किसी दूसरे अहसास तक पहुँच सकता था। उस व्यक्ति के लिए वही सच था। साधारण व्यक्ति उसी विचार का अनुसरण करते थे जो साधु-महात्माओं का विचार होता था, जिस का वे प्रचार करते थे। यदि किसी एक मुद्दे पर दो बुद्धिमान व्यक्तियों के अपने-अपने अवलोकन होते तो उन दोनों की अपनी-अपनी शिष्य परम्परा होती। उन के शिष्य अपने मत को सही मानते और उस मत पर प्रश्न सहन नहीं करते थे। मध्य युग तक विचारकों की यही परम्परा थी जिसे आज हम ''व्यक्तिपरक'' सोच कहते हैं।

चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं सदी के बाद आर्थिक और सामाजिक ढाँचों में दूरगामी परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों ने सामाजिक सोच में परिवर्तन के लिए भौतिक आधार प्रदान किया। इसे ही पुनर्जागरण कहते हैं। अब प्राकृतिक घटनाओं को जानने का एक नया अन्दाज़ बना। इस भौतिक विश्व के बारे में मनुष्य के दृष्टिकोण में बदलाव आया। सोच में यह परिवर्तन गैलिलियों के विचारों में प्रखरता से दिखाई देता है।

उस का नज़रिया, उस की खोज प्रक्रिया और निष्कर्ष प्राप्त करने के तरीके उस युग की मौलिक देन हैं।

गैलिलियों ने सर्वप्रथम सोचने के व्यक्तिपरक आधार पर चोट की। उन्होंने अरस्तु जैसे बुद्धिमान व्यक्ति के विचारों को भी टैस्ट किए जाने की बात की – चाहे दो हज़ार वर्षों तक किसी ने उन पर प्रशन उठाने की हिम्मत न की हो। गैलिलियों ने कहा कि स्वयं उन की बात को भी प्रयोग और निरीक्षणों द्वारा परखा जाए। अरस्तु के मत का खण्डन (भारी वस्तुएं हल्की वस्तुओं की अपेक्षा तेज़ी से गिरती हैं) करने के लिए उन्होंने पीसा की झुकी हुई मीनार से प्रयोग कर के दिखाया। वास्तव में वह दिखाना चाहते थे कि किसी विचार की अन्तिम सच्चाई इसी प्रकृति से प्राप्त की जा सकती है।

इस प्रकार गैलिलियों ने 'वस्तुनिष्ठ सोच' के नए तरीके को कायम किया। धीरे-धीरे, लगातार, साइंसदानों की कई पीढ़ियों के संक्षषों से यह नया विचार स्थापित हुआ। अब तक यह स्वीकार हो चुका था कि कोई भी सिद्धान्त तब तक मान्य नहीं है जब तक वह निरीक्षण और परीक्षण की परीक्षा से न गुज़र जाए। तभी से वस्तुनिष्ठता विज्ञान का आधार बनी हुई है।

परन्तु क्या विषयनिष्ठ (Subjective) विधि पूरी तरह जड़ से उखड़ चुकी थी? ऐसा नहीं था। अभी भी बहुत से वैज्ञानिकों के विचारों और अभिव्यक्तियों में यह विषयनिष्ठता भूतकाल के बोझ के रूप में प्रकट होती रही। यहाँ तक कि आज भी बहुत से वैज्ञानिक बनावटी एवं अवैज्ञानिक विचार रखते हैं। ख़ास तौर से वैज्ञानिक शोध के इलावा दूसरे मुद्दों पर।

विषयनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ विचारों का संघर्ष आइन्स्टाइन के समय में भी बहुत जीवन्त था। युवा आइन्स्टाइन को इसी समय मत चुनना था। उन्होंने बहुत मज़बूती से वस्तुनिष्ठता का दामन थामा। यही कारन है कि वस्तुपरक खोज ही उन के हर शोध का आधार है। उन्होंने न केवल वैज्ञानिक विमर्श के दायरे में छिपे विषयनिष्ठ विचारों को चिन्हित करना सीखा, अपितु सचेत तरीके से अपने ख़ुद के दिमाग से भी ऐसे विचारों को निकाल बाहर किया।

लेकिन सही विचार प्रक्रिया के चयन की समस्या यहीं पर समाप्त नहीं हो जाती। स्वयं को वस्तुष्ठि सोच के कहने वाले व्यक्तियों में भी काफ़ी मतभेद थे। जिन दिनों आइन्स्टाइन पढ़ रहे थे, उन दिनों विज्ञान में 'सकारात्मकतावाद' (Positivism) की एक और धारा चल रही थी। ऑस्ट्रिया के वैज्ञानिक अर्न्सट माक इस धारा के जाने-माने समर्थक थे। इस मत के अनुसार विज्ञान का सरोकार केवल उसी से है जो देखा जा सकता (observable) है। उन के विचार से जो देखा नहीं जा सकता वह वास्तविकता नहीं हो सकती। यह मत तब आया जब ज्ञान हासिल करने की प्रक्रिया को विषयनिष्ठ कल्पना से मुक्त करने के प्रयास हुए। सतही तौर पर तो यह ठीक लगता है। यदि कोई पूछे कि क्या चुड़ैलें उड़ती हैं, तो उस से वापस पूछा जा सकता है कि क्या उस ने किसी चुड़ैल को देखा ? यदि नहीं देखा है तो समझ लीजिए कि चुड़ैलें होती ही नहीं।

लेकिन यही बात जब विज्ञान के कार्यों में लागू की जाती हैं तो कहानी दूसरी ही होती है। आप ने डाल्टन (Dalton) के परमाणु सिद्धान्त को तो ज़रूर पढ़ा होगा। डाल्टन ने कहा था – यदि हम किसी पदार्थ को तोड़ते जाएं तो अन्त में सूक्ष्मतम कणों तक पहुँच जाएंगे, जिन्हें हम परमाणु कहेंगे (उस समय तक अणु और परमाणु का भेद स्पष्ट नहीं था)। परमाणुओं की ''किस्में'' भी सीमित हैं। इस सिद्धान्त से रासायनिक क्रियाओं को समझने में सहायता मिली। रासायनज्ञों को पता चला कि किसी रासायनिक क्रिया में भाग लेने वाले पदार्थ विशेष अनुपात में मिल कर क्रिया करते हैं।

लेकिन बहुत से भौतिक शास्त्रियों ने अणु और परमाणुओं के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया। सकारात्मकतावाद (Positivism) की दृष्टि से उन्होंने पूछा – क्या आप ने भी अणु या परमाणु को देखा है? यदि नहीं देखा तो हम क्यों मानें कि अणु या परमाणु होते हैं। यह सच है कि यह सिद्धान्त रसायनज्ञों को गणना में सहायता करता है। लेकिन इसे कल्पना के लिए एक मददगार औज़ार से अधिक कुछ नहीं मानना चाहिए।

परमाणुओं और अणुओं को वास्तविक मानते हुए कार्य करने वाले भौतिक शास्त्रियों को बहुत विरोध का सामना करना पड़ा। लुडविग बोल्ट्ज़्मन (Ludwig Boltzmann) का उदाहरण हमारे सामने हैं। उन्होंने माना की गैसें असंख्य छोटे-छोटे अणुओं से बनी होती है, जो तीव्र गति से इधर-

इधर चलते रहते हैं। उन्होंने मत रखा कि अणुओं की इस औसत गति के आधार पर दाब, ताप और आयतन के सम्बन्ध सिद्ध किए जा सकते हैं, और गैस के बर्ताव को भी समझाया जा सकता है। इस प्रकार उन्होंने Statistical Mechanics की नींव रखी। उन्होंने सम्भावना के सिद्धान्त (Theory of Probability) के सन्दर्भ में entropy की संकल्पना को भी समझाया। इन खोजों ने आने वाली भौतिकी के लिए नया मार्ग तैयार किया। लेकिन बोल्ट्ज़मन के जीते जी किसी ने भी इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया। इसलिए कि वे अणुओं को कोरी कल्पना ही मानते थे। सभी कहते थे कि जो दिखाई नहीं दे रहा है, इस आधार पर सिद्धान्त बनाना बोल्ट्ज़मन की भूल है। बेचारे बूढ़े बोल्ट्ज़मन का दिल ऐसा टूटा कि उस ने आत्माहत्या कर ली। आइन्स्टाइन के आरम्भिक वर्षों में सकारात्मकतावादियों (Positivists) का भौतिक शास्त्रियों पर इतना ज़बरदस्त प्रभाव था।

दूसरी तरफ पदार्थवाद विचार दर्शन जो मध्य युग तक दबा-दबा सा था, गैलिलियों के समय के बाद से विकसित हो चुका था। पदार्थवाद मानता है कि यह ब्रह्माण्ड पदार्थ का बना हुआ है। पदार्थ का आस्तिव हमारी चेतना से स्वतन्त्र है और इस पदार्थीय विश्व में कुछ भी पदार्थ से ऊपर नहीं है। विज्ञान जिस भी विविधता में घटनाओं की खोज करता है, वे सब गति में पदार्थ की विभिन्न अवस्थाएं हैं। यही कारण है कि सभी सच्चाइयाँ पदार्थ के गुणों में निहित हैं, और इस के विभिन्न रूपों के बीच अन्त: क्रियाओं में ढूँढने से मिल सकती है। सकारात्मकतावादियों और पदार्थवादियों के बीच मुख्य अन्तर यही था कि पहला पक्ष किसी बात की जब तक वास्तविकता नहीं स्वीकारता जब तक वह निरीक्षण में नहीं आती, जब कि दूसरा पक्ष इस बात पर ज़ोर देता है कि पदार्थ का आस्तित्व हमारी चेतना से स्वतन्त्र है, इसीलिए ज़रूरी नहीं कि वास्तविकता की संकल्पना का निरीक्षण भी हो। घटनाओं की वास्तविकता की तह तक पहुँचने के लिए कुछ सिद्धान्त बनाने पड़ेंगे जिन की वस्तुनिष्ठता से जांच हो सके।

आइन्स्टाइन ने स्वयं कहा है कि आरम्भ में वे भी सकारात्मकतावादियों के दर्शन से काफ़ी प्रभावित थे। अपने विश्वविद्यालयी वर्षों के दौरान ही उन्होंने अपने वैज्ञानिक कार्य के लिए ठीक दर्शन की तलाश शुरू कर दी थी। वे महसूस करने लगे थे कि सकारात्मकतावाद तथा अन्य व्यवहारवादी (empirical) धाराएं सच को खोजने के लिए सही नहीं है। तभी से उन्होंने पदार्थवादी दर्शन को अपना मार्गदर्शन बना लिया।

धर्म पर उन के विचारों को देखते हुए कुछ व्यक्ति सवाल करते हैं कि क्या वास्तव में आइन्स्टाइन पदार्थवादी थे? यदि ध्यान से पड़ताल की जाए तो हम पाएंगे कि धर्म पर उनकी टिप्पणियां जर्मनी में फ़ासीवाद आने से पूर्व की है। बाद के वर्षों में उन्होंने ऐसा कुछ नहीं कहा। स्वयं आइन्स्टाइन के अनुसार ईश्वर के बारे में उन का मत सपिनोज़ा (Spinoza) के मत जैसा है जो ईश्वर की पहचान इस पदार्थीय विश्व में ही करते हैं। ईश्वर की उन की धारणा उस प्रकार से धार्मिक नहीं है, जिस के अन्तर्गत ईश्वर अच्छे कार्य के लिए पुरस्कार तथा बुरे कार्य के लिए दण्ड देता है। वास्तव में आइन्स्टाइन पदार्थवादी दर्शन के ही विचारक थे, लेकिन धर्म के बारे में वे सर्वेश्वरवादी (Pantheistic) विचार से दूर नहीं जा सके। अपनी वैज्ञानिक खोजों में वे पूरी तरह वस्तुनिष्ठ और कार्य-कारण सम्बन्ध के प्रति प्रतिबद्ध थे और पूरी तरह पदार्थवादी थे।

निष्कर्ष

एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है। चाहे ब्राउनियन गति हो या प्रकाश का विद्युत प्रभाव, प्रयोग पहले भी हो चुके थे। बहुत से वैज्ञानिक इस का स्पष्टीकरण ढूँढ रहे थे। लेकिन ये आइन्स्टाइन ही थे जिन्होंने अन्धकार में रोशनी की चमक पैदा की। 1905 के 'चमत्कारी' वर्ष से पहले ही एक प्रयोग हो चुका था। मिचलसन (Michelson) और मोर्ली (Morley) ने पृथ्वी के घूमने के आधार पर पहले ही प्रयोग कर लिया था कि प्रकाश का वेग वही रहेगा चाहे वह पृथ्वी की घूमने की दिशा में चले चाहे इस की विपरीत दिशा में चले। बहुत से इतिहासकारों का मानना है कि आइन्स्टाइन को उस समय इन प्रयोगों का पता नहीं था। लगता है कि वे इन प्रयोगों से अनभिज्ञ थे कि शून्य में प्रकाश का वेग इस का अवलोकन करने वाले की गति से स्वतन्त्र होता है। फिर भी उन्होंने मज़बूत तर्क के आधार पर यह बता दिया था कि भौतिकी के क्षेत्र में क्रांति अवश्यम्भावी है जो वैज्ञानिक क्रांति का नेतृत्व कर सकती है। उन्होंने ऐसा कैसे कह दिया? यह

गहरी अन्तः प्रज्ञा उन्हें कैसे हुई? अन्तर्राष्ट्रीय भौतिकी वर्ष के दौरान होने वाले सभी सेमिनार और गोष्ठियों के केन्द्र में यह प्रश्न ज़रूर होना चाहिए। लेकिन इसी प्रश्न पर सब से कम ध्यान दिया जा रहा है। आइन्स्टाइन इसीलिए अपनी सदी के महानतम वैज्ञानिक बन पाए कि उन्होंने पदार्थवादी दृष्टिकोण चुना और उसे अपनी आदत में शामिल किया।

Physics Today में जॉन. ए. हावर्ड एक दिलचस्प घटना बताते हैं। 1944 में प्योर्टो रिको विश्वविद्यालय के एक भौतिकी के प्रोफैसर अपने भौतिकी के पाठय्क्रम में विज्ञान के दर्शन को शामिल करना चाहते थे। अपने साथियों के विरोध को देखते हुए उन्होंने आइन्स्टाइन को लिखा कि वे वैज्ञानिकों को समझाएं। आइन्स्टाइन ने उतर दिया- ''मैं आप से पूरी तरह सहमत हूँ। वैज्ञानिक प्रक्रिया के शैक्षिक महत्व को मैं समझता हूँ। विज्ञान के इतिहास और दर्शन के महत्व को मैं समझता हूँ। आज बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं, यहाँ तक कि पेशेवर वैज्ञानिक ऐसे हैं, जो मुझे ऐसे लगते हैं जिन्होंने असंख्य वृक्ष तो देख रखे हैं परन्तु वन कभी नहीं देखा। विज्ञान के ऐतिहासिक और दार्शनिक आधार की जानकारी ही एक वैज्ञानिक को वह स्वतन्त्रता देती है जिस में वह अपने पूर्वाग्रहों से अलग हो सके, जिस बीमारी से आज की पीढ़ी के अधिकांश वैज्ञानिक पीड़ित हैं। दर्शन दृष्टि से पैदा हुई स्वतन्त्रता ही मेरे विचार में सब से प्रमुख है। इसी से एक सामान्य कारीगर और एक वास्तविक सत्य शोधक में अन्तर किया जा सकता है।''

1949 में ''एल्बर्ट आइन्स्टाइन : एक दार्शनिक वैज्ञानिक'' नाम से एक पुस्तक छपी। स्वयं आइन्स्टाइन को इस पुस्तक में एक लेख लिखने के लिए बुलाया गया। उन्होंने लिखा - ''ज्ञान मीमांसा और विज्ञान का आपसी रिश्ता उल्लेखनीय है। ये दोनों एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। विज्ञान के बिना ज्ञान मीमांसा केवल ख़ाली योजना है। ज्ञान मीमांसा के बिना विज्ञान यदि सोचा जाए तो बचपने में हैं।''

आज कल विज्ञान शोधों की दुनिया इस महान वैज्ञानिक द्वारा बताए गए रास्ते से भटक गयी है। आज बहुत से वैज्ञानिक, विज्ञान के तौर-तरीके और विज्ञान के दर्शन को पढ़ने की ज़रूरत ही नहीं महसूस करते। हम ने आइन्स्टाइन को एक शिखर वैज्ञानिक के रूप में स्थापित तो कर दिया है परन्तु उन द्वारा बताए गए रास्ते पर नहीं चलते। हम सफलता के शॉर्टकट रास्तों को तलाशते फिरते हैं। आजकल बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं जो स्वयं को वैज्ञानिक कहलवाते हैं परन्तु उन्होंने विज्ञान को केवल पेशा बनाया है। यदि चमत्कारी वर्ष 1905 के बाद से आज तक विज्ञान के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन खोजना चाहें तो वह यही मिलेगा कि अधिकतर वैज्ञानिकों की रुचि विज्ञान के दर्शन जानने में नहीं है। विज्ञान के विकास और उन्नति पर इस का ज़बरदस्त नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

आइये, आज हम सब प्रतिज्ञा करें कि हम इस कमी को दूर करेंगे और आइन्स्टाइन द्वारा बताएं मार्ग पर चलेंगे।

(भावनानुवाद : वेदप्रिय)

पृष्ठ 36 का शेष

यह तो ग्रहों की बात हुई। अगर उपग्रह की बात करें तो सूर्य परिवार में तीस से अधिक उपग्रह या चंद्रमाएं भी हैं। ये उपग्रह अपने-अपने ग्रह के चक्कर काटते हैं और इनमें से ज्यादातर पश्चिम से पूर्व की दिशा में घूम रहे हैं। इस तरह हम पाते हैं कि जिस दिशा में सूर्य लट्टू की तरह घूम रहा है, ग्रह लट्टू की तरह घूम रहे हैं और परिक्रमा कर रहे हैं उपग्रह भी उसी दिशा में अपने-अपने ग्रह के चारों और चक्कर काट रहे हैं। ग्रहों उपग्रहों समेत पूरा सूर्य परिवार आकाश में बहुत तेजी से भाग रहा होता है और इस परिवार के सदस्य कभी एक दूसरे से बिछड़ते नहीँ।

सौर परिवार के सदस्यों के बीच यह सामंजस्य उनके बीच के रिश्ते को ही साबित करता है। यहि यह मान लिया जाये कि पृथ्वी और अन्य ग्रह-उपग्रहों का जन्म आकाश में अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग तरीकों से हुआ तो फिर वे एक समूह में कैसे आ गये और उनमें इतना जबरदस्त तालमेल कैसे बना। इसी आधार पर वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुँचे कि सूर्य से ही पृथ्वी और अन्य ग्रहों-उपग्रहों का जन्म हुआ। सौर जगत के जन्म के बारे में वैज्ञानिकों की खोज अभी भी जारी है और वे इस पर से परदा उठाने का कोशिश में लगातार लगे हुए हैं।

(स्रोत : बाल पत्रिका ''कोंपल'')

हाथियों के पुरखे

– स्कन्द शुक्ल

अतीत को लेकर उत्सुकता मनुष्य में स्वाभाविक है – अगर वह विशाल हो, व्यापक हो, विभ्राट हो। विगत महान व्यक्तित्वों, उन्नत सभ्याताओं और यहाँ तक कि विलक्षण जीव-जन्तुओं के प्रति हमारे मन में यह भाव उठा करता है कि काश, हम इन्हें साक्षात सामने देख पाते!

विज्ञान ने अब तक कोई समय को ऐसी मशीन नहीं बनायी है, जिसे लेकर वह हमें अतीत में उतार दे। अतीक को समझने के लिए समय और गति को समझना ज़रूरी है और भौतिकशास्त्री इसके लिए (आइंस्टीन का अनुकरण करते हुए) नित्य प्रयासरत हैं। लेकिन फिर जीव-विज्ञान हमें दूसरी तरह से अतीत से मिलवाने का भरोसा दिलाता है। वह यह प्रयास करता है कि हम अतीत में चाहे न जा सकें, अतीत के कुछ जीव हम तक ले आये। वे जीव जो आज विलुप्त हैं, लेकिन कभी धरती धमकाते थे। और इस पर निर्भय विचरते थे।

आज जिन सूँडदार जानवरों को हम हाथी कहते हैं, क्या सदा से वे ऐसे ही थे? क्या इन जीवों जैसे और सैंकड़ों जीव पहले इस मिट्टी पर विचरते रहें होंगे? क्या अफ्रीका और एशिया की ये तीन गज-स्पीशीज़ (हाथियों की प्रजातियाँ) सदा से ऐसी हो रही है और सदा ऐसी ही रहेंगी? यह सोना कितना आसान होता है कि संसार सदा ऐसा ही रहा है और रहेगा! ऐसा ही आसमान, ऐसी ही धरती, ऐसे ही ग्रह-नक्षत्र, ऐसे ही जीव-जन्तु-पक्षी-पेड़-पौधै!

लेकिन डार्विन का जैविक विकास हमें बता चुका है कि अतीत आज जैसा नहीं रहा था। वर्तमान भूत (अतीत) को अपने-सा सोचता मानता है, लेकिन भूत उस-सा नहीं, बल्कि उससे बहुत अलग था। सो आज के मनुष्यों से पुराणे मनुष्य बहुत अलग थे, बल्कि बहुत से तो ऐसे थे, जिन्हें हम आज की परिभाषा के अनुसार मनुष्य कह भी नहीं सकते। पर्यावरण के अनुसार जो नहीं ढल सके, मिट गये। जो प्रजातियाँ ढल गयीं, वे आगे बढ़कर बदलती-बदलती वर्तमान तक पहुँचीं।

सो आज के हाथियों को देखकर अतीत के गज-पूर्वजों की कल्पना न करना। न जाने कितनी सूँडदार प्रजातियाँ लाखों-लाख साल में पैदा हुई, पनपीं और फिर मिट गयीं। वे तात्कालिक समय के साथ न संघर्ष कर सकीं और न समझौता। उन्होंने घुटने टेक दिये। आज बचे दिखाई देते एशियाई हाथी, अफ्रीकी सवाना-हाथी और अफ्रीकी झाड़ी हाथी उन मिट चुके सैकड़ों पुरखों की सिमटी मात्र तीन सन्तान-धाराएँ हैं।

वैज्ञानिक हमें अतीत के उन गज-पूर्वजों से मिलवाने के प्रयास में है। नित्य कहीं-न-कहीं जब कोई जीवाश्म प्राप्त होता है, तो उससे उस जीव का डीएनए प्राप्त करने की भी कोशिश रहती है। हर जीव के बाहरी-भीतरी गुणधर्म उनके डीएनए में अंकित हैं। सो अगर डीएनए की पहचान मिल गयी, तो जीव की बनावट मिल गयी। और फिर आज के हाथियों के डीएनए में आवश्यक बदलाव करके उनमें प्राचीन गज-पूर्वजों के डीएनए के टुकड़े टाँक दिये गये। अब जो जन्मा वह अतीत की पहचान लिए वर्तमान का जीव था।

वैज्ञानिकों ने हाथियों के तमाम पुरखों के जीवाश्म प्राप्त किये हैं। कुछ सम्पूर्ण, कुछ अधूरे। अलग-अलग बनावट वाले। उनका अध्ययन किया है। उनसे डीएनए प्राप्त करने की कोशिश की है। और फिर वर्तमान काल की हथिनी के भीतर एक ऐसा भ्रूण विकसित करने के करीब पहुँच गये हैं, जो भूतकाल के इन पुरखों के से लक्षण लिये आज जनमेगा। आधुनिक काल में मैमथ, स्टेगोडॉन, गोम्फ़ोथीरियम और मैस्टोडॉन जैसे गज-पूर्वजों को संसार में लाया जा सकता है। और यह विज्ञान की निश्चित ही बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

जिस तकनीकी का प्रयोग इस काम में किया जा रहा है, वह क्रिस्पर तकनीकी है। इस तकनीकी को हमनें पहले-पहल जीवाणुओं में देखा और समझा कि किस तरह वे इसका प्रयोग करके विषाणुओं (वायरस) से अपनी रक्षा करते हैं। विषाणु जब जीवाणु के भीतर दाखिल हो जाते हैं तो अपना डीएनए उनके डीएनए में जोड़ देते हैं। इससे जीवाणु के शरीर में परिवर्तन आ जाता है और वह विषाणुओं का निर्माण भी करने लगता है, जिसका हानिकारक प्रभाव उसे झेलना पड़ता है।

शेष पृष्ठ 48 पर

हम क्यों चुनते हैं सरकार

–रंजीत वर्मा

हम क्यों चुनते हैं सरकार
दीये भर की रौशनी बनकर सरकार कभी
हमारी जिंदगी में नहीं आती
एक मुट्ठी भात बनकर
कभी हमारी थाली में नहीं आती!
वह जब भी आती है
वर्दी में आती है
और अपने बुलडोजर की धमक से
जिंदगी के सारे रंग कुचल जाती है!
हम क्यों चुनते हैं सरकार
जो हमारे रास्तों में कीलें ठोक देती है और
हमारे घरों को अपना बंकर बना लेती है
वह मौत की तरह मंडराती है हमारे सिरों पर
और पाँवों के नीचे से
जमीन छीन ले जाती है
वह मिटा देती है
वे तमाम जगहें
जहाँ से पीढ़ियाँ हमें पुकारती हैं
फिर वह आती हैं हमारे पास
और हमसे यहाँ के होने का प्रमाण मांगती हैं!
हम क्यों चुनते हैं सरकार
वह हमारी जिंदगी से अक्षर छीन लेती है
पिता के हाथों से काम छीन लेती है
बात दुश्मनों से बचाने की जो करती है
और खुद दुश्मनों की तरह
हमसे पहाड़, नदी, जंगल छीन लेती है
हमारा सुकून, हमारी शांति
हमारी मासूमियत छीन लेती है
घर, परिवार, आँगन छीन लेती है!
हम क्यों चुनते हैं सरकार
वह हमारे घरों की छतें जला देती है
दीवारें जला देती है
वह हमारी नींद में ताबड़तोड़
गोलियाँ चलाती घुसती है
और सपनों को
बेगुनाह खून में डुबो देती है
वह हमें दंगों की आग में झोंक देती है
वह हमारे डेथ वारंट पर
पहले ही से दस्तखत किये बैठी होती है!
हम क्यों चुनते हैं सरकार ?
हथौड़े की तरह प्रहार करते हुए
जरूर पूछा जाना चाहिए यह सवाल
कि आखिर
हम क्यों चुनते हैं सरकार?

अगर आप न्याय प्रिय हैं

–संदीप कुमार

अगर आप न्याय प्रिय हैं
तो मत दो नसीहतें
जुर्म की मार से दब चुकी जुबानों को
चुप रहने की!

अगर आप न्याय प्रिय हैं
तो तनकर खड़े हो जाओ
हर न्याय परिसर के सामने
और पूछो एक सीधा–सरल सवाल
हे मुख्य न्यायधीशो!

‘जब पुलिस ही करेगी न्याय
तब आप अपने न्यायालयों को
ताले लगाकर घर क्यों नहीं बैठ जाते?’
अगर आप न्याय प्रिय हैं
तब आप ज़ालिम की
और जुल्म से दबे लोगों की हिंसा को
एक ही तराजू में नहीं तोल सकते
आपको चुनना होगा एक पक्ष
अन्यथा खड़े होना होगा आपको भी
जनता के कठघरे में
और देने होंगे सीधा सवालों के
सीधे व साफ जवाब
जब देश झोंका जा रहा था
दंगों की भट्टी में

तब आप किस डर से कह रहे थे
जुल्म बर्दाश्त करते जाओ?

अगर आप न्याय प्रिय हैं
तब आपको इतिहास जरूर पढ़ना चाहिए
और खोजने चाहिएं वो तथ्य
कि क्यों?
चार्वाकों का कत्ल कर दिया गया?
उस वक्त यदि पलटकर
दिया होता जवाब चार्वाक ने
तब आज देश में
नहीं बह रही होती
ये नफरत की आँधी!

अगर आप न्याय प्रिय हैं
तब खड़े हो जाइए
हर उस आंदोलन के पक्ष में
जिसकी कमर झुक गई है
जुर्म की मार सहते सहते।

कविता

–मनीष आजाद

कवि ध्यानमग्न
स्त्री के अथक श्रम पर
लिख रहा है कविता
स्त्री झाड़ू लगाते हुए
कवि को पैर उठाने को कहती है,
कवि नाराज,
'तुम्हें इसी समय झाड़ू लगाना था?'

कवि स्त्री प्रेम पर कविता लिख रहा है
बीच-बीच में मेज पर रखा
पत्नी का मोबाइल भी चेक कर रहा है!

कवि मंत्रमुग्ध
नारी-सौंदर्य पर लिख रहा है कविता
लेकिन खीझ-खीझ जाता है
काम करती पत्नी के
कमरे में बार-बार आने-जाने से!
कवि तेवर के साथ
लिख रहा है कविता नारी मुक्ति पर
लेकिन इस मुक्ति में पत्नी
कहीं शामिल नहीं है!
अन्तत: कविता पूर्ण हुई
उसने पत्नी को कविता सुनाई
उसकी कविताओं की प्रथम श्रोता जो ठहरी।
पत्नी ने कविता ध्यान से सुनी
फिर धीमी आवाज में बोली
'कविता तो ठीक है,
पर इसमें मैं कहाँ हूँ?'
कवि ने झल्लाते हुए कहा
यह समझने के लिए कवि दिमाग चाहिए
जो तुममें नहीं है
क्योंकि तुम एक स्त्री हो!
कहकर कवि कलफ लगे कुर्ते पायजामे में
कवि सम्मेलन की ओर निकल गया।

मई-जून की कुछ महत्त्वपूर्ण तिथियाँ

1 मई – अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर दिवस : 8 घण्टे काम के दिन की माँग को लेकर 1886 में शिकागो में शहीद हुए मजदूरों की याद में इस दिन दुनिया भर के श्रमिक अपने हक के लिए लड़ने का संकल्प लेते हैं।

5 मई (1818) –कम्युनिस्ट विचारधारा के संस्थापक महान चिन्तक और क्रान्तिकारी कार्ल मार्क्स का जन्म दिवस

5 मई (1911) – चटगाँव विद्रोह की नायिका-प्रीतिलता वाडेकर का जन्मदिवस

7 मई (1861) – रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्मदिवस

10 मई – अंग्रेज हुक्मरानों के खिलाफ, 1857 में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की शुरूआत।

18 मई (1872) – महान गणितज्ञ और चिन्तक बट्रेण्ड रसेल का जन्मदिवस

19 मई (1890) – वियतनाम के महान क्रान्तिकारी नेता हो चि मिन्ह का जन्म दिवस

24 मई (1899) – महान बंगला कवि काजी नजरुल इस्लाम का जन्म दिवस

28 मई (1929) – भगत सिंह के वरिष्ठ साथी, हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के नेता भगवतीचरण वोहरा बम का परीक्षण करते समय शहीद हो गये

11 जून (1857) – महान् देशभक्त क्रान्तिकारी, काकोरी केस के शहीद रामप्रसाद बिस्मिल का जन्म दिवस

तर्कशील सोसायटी पँजाब की प्रांतीय वार्षिक बैठक की रिपोर्ट

तर्कशील सोसायटी पंजाब की दो दिवसीय राज्य स्तरीय वार्षिक बैठक 6 और 7 अप्रैल 2024 को तर्कशील भवन बरनाला में आयोजित की गई जिसमें पंजाब के दस क्षेत्रों और लगभग 62 इकाइयों के 126 प्रतिनिधियों और दर्शकों ने भाग लिया। इस अवसर पर संगठनात्मक स्तर पर तर्कशील आंदोलन को मजबूत एवं विस्तारित करने, गुणवत्तापूर्ण एवं सस्ते तर्कशील साहित्य को समाज के सभी वर्गों लोगों तक पहुंचाने, जनपक्षधर स्वस्थ सांस्कृतिक विकल्प प्रस्तुत करने, समर्पण, चिंतन एवं आत्ममंथन पर चर्चा की गयी. पांच सत्रों के दौरान तर्कशील कार्यकर्ताओं के बीच वैज्ञानिक चेतना के विकास और समाज में बढ़ती मानसिक बीमारियों के कारणों और उपचार के संबंध में विस्तार से चर्चा की गई।

बैठक के पहले दिन के पहले सत्र में ''संगठन को कैसे मजबूत करें?'' की कार्य क्षमता बढ़ाने के लिए जोन और यूनिट स्तर पर विभिन्न विषयों पर प्रशिक्षण शिविर आयोजित करने की जरूरत पर बल दिया गया । इसके अलावा विद्यार्थी चेतना परीक्षण से संबंधित विद्यालयों के शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को तर्कशील सोसायटी द्वारा आयोजित सेमिनारों एवं अध्ययन मंडलों का हिस्सा बनाकर उनसे चर्चा किए जाने की योजना बनाने पर चर्चा की। इस सत्र की अध्यक्षता सोशल मीडिया विभाग के प्रमुख संदीप धारीवाल भोजा, जोन नवांशहर के प्रमुख सतपाल सलोह और प्रिंसिपल गुरमीत खरड़ ने की, जबकि मंच का संचालन राज्य जथेबंदक प्रमुख मास्टर राजिंदर भदौड़ ने किया। बेशक, पहला सत्र निर्धारित समय पर दोपहर 12 बजे शुरू हुआ, लेकिन प्रतिनिधियों के उत्साह और गंभीर चर्चा के कारण यह डेढ़ घंटे देर से समाप्त हुआ।

दूसरे सत्र में ''गुणवत्तापूर्ण और सस्ता साहित्य लोगों तक कैसे पहुंचाएं'' के दौरान विभिन्न वक्ताओं ने कहा कि लोगों में तर्कशील साहित्य पढ़ने के प्रति रुचि पैदा करने के लिए हमें तर्कशील साहित्य वैन को स्कूलों के अलावा कॉलेजों और विश्वविद्यालयों तक ले जाना चाहिए। पंजाब में पुस्तक मेलों की भी बहुत आवश्यकता है। तर्कशील पत्रिका को वैज्ञानिक विचारधारा के मुख्य प्रवक्ता के रूप में प्रत्येक गाँव, कस्बे, पुस्तकालय, कार्यालय, घर और कारखाने तक पहुँचाने के लिए समूह के सदस्यों द्वारा विशेष प्रयास किये जाने चाहिए। बौद्धिक क्षमता बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक और क्रांतिकारी साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता पर जोर दिया गया। इस सत्र की अध्यक्षता प्रांतीय साहित्य विभाग के प्रमुख हेम राज स्टेनौ, जोन जालंधर के संगठन प्रमुख सुरजीत टिब्बा और मानसा जोन के संगठन प्रमुख मास्टर लखा सिंह ने की, जबकि मंच संचालन ''तर्कशील'' पत्रिका के प्रधान संपादक बलबीर लौंगोवाल ने किया।

तीसरे सत्र ''रस्मों रिवाजों एवं सांस्कृतिक परिवर्तन'' में वक्तायों ने कहा कि बेशक भारतीय समाज में पुरोहितों के सदियों से चले आ रहे भय के परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में अनुष्ठानों, समारोहों, त्योहारों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक भूमिका रही है, लेकिन वर्तमान वैज्ञानिक चेतना के युग में कई ऐसे महंगे और समय से घिसे-पिटे रुढ़िवादी रीति-रिवाज हैं जिनकी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मनुष्य और समाज के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं है और हमें उन्हें अपने पारिवारिक कार्यक्रमों से खत्म करने की जरूरत है। इसे सुनिश्चित करने के लिए, हमें जीवन के विभिन्न चरणों, जन्म, विवाह, मृत्यु और अन्य महत्वपूर्ण अवसरों पर लोगों के अनुकूल सामाजिक और सांस्कृतिक विकल्प पेश करने के लिए ठोस पहल करने की आवश्यकता है। पिछले कई दशकों से तर्कशील कार्यकर्ताओं द्वारा मरणोपरांत देहप्रदान, नेत्रप्रदान एवं अंगप्रदान के अभियान ने समाज में जागरूकता एवं जनपक्षधर सामाजिक परिवर्तन लाने में बड़ी सफलता प्राप्त की है। इस सत्र की अध्यक्षता राज्य मीडिया विभाग के प्रमुख सुमीत अमृतसर, ज़ोन अमृतसर के संगठनात्मक प्रमुख राजवंत बागड़ीया और लुधियाना ज़ोन के नेता राजिंदर जंडियाली ने की, जबकि मंच का संचालन राज्य सांस्कृतिक विभाग के प्रमुख जोगिंदर कुल्लेवाल ने किया।

दूसरे दिन 7 अप्रैल को चौथे सत्र ''समर्पण, चिंतन एवं आत्मचिंतन'' में तर्कशील कार्यकर्ताओं में अध्ययन, चिंतन एवं समर्पण की भावना विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया. वक्तायों ने कहा कि वैज्ञानिक चेतना के प्रचार-प्रसार को और अधिक बढ़ाने के लिए तर्कशील कार्यकर्ताओं को शहीद भगत सिंह की तरह अध्ययन, समर्पण और चिंतन की भावना अपने अंदर विकसित करने की जरूरत है। अत: वैज्ञानिक साहित्य के अतिरिक्त विरोधी विचारधाराओं के साहित्य का भी गहराई से अध्ययन करने की महती आवश्यकता है ताकि वैचारिक विरोधियों

द्वारा फैलाये गये भ्रामक साम्प्रदायिक एवं अन्धविश्वासपूर्ण प्रचार का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रतिकार किया जा सके। इसके साथ ही अतीत में रह गई कमियों, कमजोरियों और असफलताओं पर आत्ममंथन करना चाहिए। इस सत्र की अध्यक्षता राज्य कानून विभाग के प्रमुख जसविंदर फगवाड़ा, बठिंडा जोन के संगठनात्मक प्रमुख बलराज मौड़, मुक्तसर-फाजिल्का जोन के प्रमुख कुलजीत डंगरखेड़ा ने की, जबकि मंच संचालन राज्य मुद्रण विभाग के प्रमुख राजपाल सिंह ने किया।

इस अवसर पर, पंजाबी साहित्य के प्रतिभाशाली शोधकर्ताओं, डॉ. स्टालिनजीत और सीए प्रदीप कुमार को तर्कशील सोसायटी को निस्वार्थ सेवाएं प्रदान करने के लिए पुस्तकों का एक सेट और सम्मान चिन्ह देकर सम्मानित किया गया।

पांचवें एवं अंतिम सत्र ''मानसिक रोग एवं समाज की भूमिका'' में समाज में दिन-ब-दिन बढ़ती मानसिक बीमारी के कारण एवं उपचार पर विस्तार से चर्चा की गई। इस सत्र की अध्यक्षता राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय विभाग के प्रधान जसवन्त मोहली, बरनाला जोन के संगठन प्रधान मास्टर परमवेद संगरूर और पटियाला जोन की नेता कुलवंत कौर ने की, जबकि मंच की कार्यवाही का संचालन राज्य मानसिक स्वास्थ्य सलाहकार विभाग के प्रमुख अजीत प्रदेसी ने किया।

इस अवसर पर मुख्य वक्ता एवं मानसिक रोग विशेषज्ञ डॉ. राज कुमार बंसल ने विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों के बारे में जानकारी देते हुए कहा कि अधिकांश मानसिक रोग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक व्यवहार जैसे कारणों से संबंधित होते हैं। व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक स्थितियाँ प्रमुख कारण होते हैं। मानसिक बीमारी, आत्महत्या, अन्धविश्वास के विरुद्ध लड़ाई तब तक नहीं जीती जा सकती जब तक ऐसी स्थितियाँ पैदा करने वाली साम्राज्यवादी,पूंजीवादी एवं जनविरोधी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियाँ तथा भ्रष्ट शासन व्यवस्था नहीं बदली जाती उन्होंने मानसिक भ्रम के हजारों मामलों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सुलझाने के लिए तर्कशील सोसायटी की सराहना की और उनका इलाज पाखंडी साधु-संतों और बाबाओं के पास जाने के बजाय मानसिक रोगों के विशेषज्ञों से कराने की जरूरत पर बल दिया।

पांच सत्रों में हुई गंभीर चर्चा में प्रतिनिधि राजेश अकलिया, राम स्वर्ण लक्खेवाली, गुरप्रीत शाहिना, भूरा सिंह महिमा, राम सिंह निर्माण, जोगा सिंह, कुलविंदर नागरी, गगन रामपुरा, हरचंद भिंडर, सुखविंदर बागपुर, जुझार लोंगोवाल, मुख्तियार गोपालपुर, दीप दिलबर, लाभ सिंह छाजली, डॉ. मजीद आजाद, प्रिंसिपल मंजीत मलसियां, नसीब चंद बबी, सुरिंदर पाल पिद्दी, मोहन बडला, संदीप दर्दी, बूटा सिंह वक्फ, जगदीश रायपुर डब्बा, डॉ. अवतार दीप, विश्व कांत, राम कुमार पटियाला, सुरिंदर मलूकपुरी, सोहन सिंह माझी, हरबंस सिंह मानसा, गुरमेल भुटाल ने भाग लिया। इस अवसर पर अन्यों के अलावा तर्कशील नेता सुरजीत दौधर, भूपिंदर फौजी, चरणजीत पटवारी, अशोक कुमार, जगदेव रामपुरा, करतार सिंह, धर्मपाल लुधियाना, जसपाल बसरके, राज कुमार वेरका, बिट्टू रूपेवाली, तरलोचन गुरदासपुर, राजू झाकोलड़ी, परमजीत कौर, नरिंदर कौर, हरजिंदर जलालपुर, मास्टर जसबीर सिंह, बलविंदर कुमार, पाल बागपुर, प्रवीण जंडवाला, लखबीर सिंह और राम लाल आदि शामिल थे। इस अवसर पर विभिन्न सत्रों के दौरान तर्कशील नेता जोगा सिंह, राम सिंह निर्माण, मंजीत घनगस, नायब सिंह रटौल ने क्रांतिकारी गीत व कविताएं प्रस्तुत कीं।

बैठक के अंत में राज्य नेता सुमीत अमृतसर द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावों में भारत में धर्म को राजनीति से अलग करना, सांप्रदायिक घृणा भाषण पर सख्त प्रतिबंध, धारा 295 और 295 ए के तहत तर्कशील नेताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं के खिलाफ झूठे और अवैध मामलों को तत्काल खारिज करना शामिल था। और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को बिना शर्त निरस्त करने की मांग की, जिसमें पंजाब में अंधविश्वास विरोधी कानून बनाना, शिक्षा के निजीकरण और व्यावसायीकरण की नीति को रद्द करना और सरकारी अस्पतालों और प्राथमिक स्वास्थ्य में वैज्ञानिक पाठ्यक्रम और मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञों को बहाल करना शामिल है। सभी स्वास्थ्य केन्द्रों पर एक एक डॉक्टर की नियुक्ति का प्रस्ताव राज्य भर के तर्कशील प्रतिनिधियों द्वारा सर्वसम्मति से पारित किया गया। प्रांतीय संगठन प्रमुख मास्टर राजेंद्र भदौड़ ने सभी प्रतिनिधियों, दर्शकों और डॉ. बंसल का धन्यवाद किया।

इस दो दिवसीय आयोजन की संपूर्ण व्यवस्था की जिम्मेदारी राज्य वित्त प्रमुख राजेश अकलिया और बिंदर धनौला ने निभाई जबकि पंजीकरण की जिम्मेदारी संगरूर इकाई के नेता मास्टर परमवेद संगरूर, सीता राम बलद कलां, गुरदीप सिंह ने निभाई। इस मौके पर कृष्ण सिंह और सुरिंदर पाल उपल ने तर्कशील साहित्य वाहन की पुस्तक प्रदर्शनी भी लगाई, जिसके प्रभारी राज्य नेता राम स्वर्ण लक्खेवाली और बिंदर धनौला थे।

इस सभा में दोनों दिन उपस्थित सभी प्रतिनिधियों एवं दर्शकों की उत्साहपूर्ण प्रतिक्रिया देखने को मिली और दोपहर के भोजन के बाद सभी तर्कशील कार्यकर्ता तर्कशीक आंदोलन को और अधिक विस्तारित करने का संकल्प लेते हुए अपने गंतव्य के लिए रवाना हुए।

हिंदी अनुवाद : गुरमीत अम्बाला

रिपोर्ट : सुमीत अमृतसर

प्रान्त मीडिया प्रमुख

पृष्ठ 43 का शेष

इसलिए इन विषाणुओं से लड़ने के लिए जीवाणु क्रिस्पर तकनीकी का प्रयोग करते हैं। जहाँ-जहाँ विषाणु का डीएनए लगा है, उसकी पहचान कर ली जाती है। फिर एक खास पद्धति से उसकी काट-छाँट कर दी जाती है। अगर यह पता हो कि पैबन्द कहाँ लगा है, तो क्या कैंची से काटकर तुम उसे अलग नहीं कर सकते? बस तुम्हें कपड़े में हुए छेद की अपने ही धागों से मरम्मती सिलाई आनी चाहिए!

इस क्रिस्पर तकनीकी में एक एन्जाइम भूमिका निभाता है, जिसे कैज 9 कहा गया है। यह एक छोटे आरएनए के कॉम्पिलमेण्टरी (पूरक) टुकड़े को हाथी के डीएनए के किसी खास हिस्से से जोड़ देगा। अब यहाँ हम गज-डीएनए को खोलकर और इस हिस्से में काट-छाँट करके मैमथ या किसी अन्य गज-पूर्वज के डीएनए का टुकड़ा देंगे। इसी तरह के कई टुकड़े लगने के बाद अब हाथी का यह डीएनए मिश्रित हो जायेगा। यानी इसमें हाथी और मैमथ, दोनों के गुणधर्म होंगे। इस मिश्रित डीएनए को किसी एककोशिकीय भ्रूण में डालकर इसे हथिनी के गर्भ में प्रत्यारोपित कर देंगे। लगभग दो साल बाद जो जीव जन्मेगा, वह मैमथ या कोई अन्य गज-पूर्वज ही होगा।

तुम कहोगे कि हमनें सम्पूर्ण मैमथ-डीएनए तो लिया नहीं, तो नया जनमा जीव फिर सम्पूर्ण मैमथ कैसे हुआ? यह तो एक प्रकार का खिचड़ी जानवर है। सही कहा तुमने! यह 'विशुद्ध' मैमथ न होकर मिश्रित या संकर अथवा हाइब्रिड किस्म का जीव होगा। लेकिन क्या पता आगे वैज्ञानिक मैमथ के सम्पूर्ण डीएनए पाकर उसे ही आरोपित करनें में कामयाब हो जायें और तमाम विलुप्त हो चुके जीवों को एक बार फिर हम सचमुच देख सकें!

(स्रोत: बाल पत्रिका ''कोंपल'')

मूक नायक संघ बरवाला ने किया समारोह

दिनांक 14 अप्रैल 2024 को को मूक नायक संघ बरवाला द्वारा डॉक्टर भीमराव अंबेडकर जन्मोत्सव का बहुत ही भव्य समारोह किया गया । इस कार्यक्रम में डॉक्टर बी आर अंबेडकर के जीवन से जुड़े हुए घटनाओं को दर्शाते हुई चित्र प्रदर्शनी का आयोजन किया गया, वहीं उनके जीवन से जुड़ी हुई डॉक्युमेंट्री भी दिखाई गई। इस अवसर पर हरियाणा तर्कशील सोसाइटी दोबारा दिखाया गया कार्यक्रम ''जादू एवं जागृति'' लोगों के लिए आकर्षण का केंद्र रहा। पंडाल में मौजूद समस्त जनों में एक वैज्ञानिक चेतना जगाने का एक सर्वोत्तम प्रयास किया गया। यह कार्यक्रम फरियाद सिंह सनियाना व सहयोगी रामप्रसाद के द्वारा बहुत ही बेहतरीन तरीके से दिखाया गया। लोगों ने इस कार्यक्रम की बड़ी प्रशंसा की। फरियाद सिंह ने डॉ बी आर अंबेडकर के जन्मदिवस की बधाई देते हुए तथा उनके बताए हुए रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित करते हुए ,अपने कार्यक्रम की शुरुआत की। उन्होंने बताया कि किस प्रकार हमारा समाज अंधविश्वासों की दलदल में धसा हुआ है और आए दिन लोग मर रहे हैं और पाखंडियों के शिकार हो रहे हैं। आज के दिन दिन तर्कशील होना बहुत जरूरी हो गया है। उन्होंने अनेक जादू की आइटम के माध्यम से स्पष्ट किया की किस प्रकार विज्ञान की ट्रिक दिखाकर पाखंडी दिव्य शक्ति का नाम देकर भोले भाले लोगों को गुमराह करते हैं। उन्होंने बताया कि इन सबसे बचने का एक ही उपाय है वह रास्ता स्वयं बाबा साहब भी बात कर गए हैं वह है शिक्षा, कम खाओ कम पहनों मगर अपने बच्चों को खूब बढ़ाओ ।पानी से दिया जलाना, चाकू से लुटिया उठाना, जीभ में छेद करना, आग से नहाना, सोने की चेन निकालना आदि अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हुए उनके पीछे के वैज्ञानिक कर्म पर भी चर्चा की गई। जिसका लोगों ने बहुत ही फायदा उठाया। कार्यक्रम के अंत में तर्कशील सोसायटी के सदस्यों का मान सम्मान किया गया। कार्यक्रम के लिए उन्हें बधाई भी दी गई।

सुबह सिंह सुबोध की कलम से



सर्वोच्च न्यायालय की सखती के उपरंत राम देव द्वारा अखबारों में दिया

बिना शर्त क्षमायाचिका

भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय में विचाराधीन प्रकरण (रिट याचिका सं. 645/2022) के संदर्भ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों/आदेशों का पालन न करने अथवा अवज्ञा के लिए हम वैयक्तिक रूप से, साथ ही कम्पनी की ओर से बिना शर्त क्षमायाची हैं।

हम विगत 22.11.2023 को बैठक / संवाददाता सम्मेलन आयोजित करने के लिए भी क्षमाप्रार्थी हैं। हम अपने विज्ञापनों के प्रकाशन में हुई गलती के लिए भी ईमानदारी से क्षमा चाहते हैं और पूरे मन से प्रतिबद्धता व्यक्त करते हैं कि ऐसी त्रुटियों की पुनरावृति नहीं होगी।

हम पूरी सावधानी और अत्यंत निष्ठा के साथ माननीय न्यायालय के निर्देशों का पालन करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। हम न्यायालय की महिमा का सम्मान बनाए रखने और लागू कानूनों एवं माननीय न्यायालय / संबंधित अधिकारियों के निर्देशों का पालन करने का वचन देते हैं।

निवेदक,

पतंजलि आयुर्वेद लिमिटेड, आचार्य बालकृष्ण, स्वामी रामदेव,

मजदूर दिवस May Day

डॉ विनोद कुमार शकुचंद्र

ना खत्म होने वाला हमने, एक सफर देखा
उस की आंखों में, भूखे रहने का डर देखा

रोज कुंआ खोदता है,पानी पीने के लिए वो
मंजिल को बढ़ता मजदूर, बिन डगर देखा

रौशनी झांक रही है, महलों की खिड़कियों से
और झोपड़ी में फैलता, अंधेरे का कहर देखा

कितना वजन उठाना है, कोई हिसाब ही कहां
मजबूरियों का हाल भी जैसे है, लचर देखा

सुबह से शाम, काटता है पेट, दूसरों की खातिर
उस मजदूर का पेट हमने भूखा, बराबर देखा

मई डे मना रहे हैं हम, जिस मजदूर के नाम का
उस दिन भी सुना सा, उस गरीब का घर देखा

खुशी तो जैसे, मर गई है उसके लिए हर एक
ग़म, हिस्से उसके आया बदस्तूर, मगर देखा

रामदेव को सुप्रीम कोर्ट से मिली फटकार

योग कारोबारी रामदेव और उनके सहायक बालकृष्ण को देश के प्रमुख अखबारों में माफीनामा छपवाना पड़ा. यह माफ़ी इसलिए मांगनी पड़ी क्योंकि सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बाद भी उन्होंने औषधि एवं उपचार अधिनियम का उल्लंघन करते हुए पतंजलि के उत्पादों के बारे में भ्रामक विज्ञापन प्रकाशित करना जारी रखा था। अगस्त 2022 में, इंडियन मेडिकल एसोसिएशन ने रामदेव के उस दावे को चुनौती देते हुए सुप्रीम कोर्ट का रुख किया जिसमें उन्होंने आधुनिक विज्ञान का मजाक उड़ाते हुए कहा था कि 'यह बकवास है और कोरोना से होने वाली मौतों के लिए एलोपैथिक उपचार जिम्मेदार है।' इससे पहले फरवरी 2021 में रामदेव ने कोरोना की दवा कोरोनिल किट का प्रचार करते हुए दो केंद्रीय मंत्रियों हर्ष वर्धन और नितिन गडकरी की मौजूदगी में प्रेस कॉन्फ्रेंस की थी। फिर भी आईएमए ने मंत्री हर्षवर्धन से इस संबंध में स्पष्टीकरण मांगा तो उन्होंने अगले दिन अखबारों में बयान दिया कि कोरोनिल कोरोना की दवा नहीं बल्कि इम्युनिटी बूस्टर है. देशी चिकित्सा व्यवसाय के अलावा बाबा विवादास्पद राजनीतिक बयान भी देते हैं, जिनमें मुसलमानों के खिलाफ नफरत भरे बयान भी शामिल हैं।

रामदेव को फटकार के बाद प्रमुख अखबारों में माफीनामा छपवाना पड़ा है।



वक्ता डा. राजकुमार बंसल एंव अध्यक्ष मंडल

तर्कशील सोसायटी पंजाब के राज्यस्तरीय सम्मेलन में उपस्थित तर्कशील कार्यकर्ता





डाक्टर स्टालिनजीत का सम्मान करते हुए तर्कशील नेतृत्व

तर्कशील नेतृत्व द्वारा सी.ए . प्रदीप कुमार के सम्मान की झलक



If undelivered please return to :

Tarksheel

Tarksheel Bhawan, Tarksheel Chowk,
Sanghera By Pass, BARNALA-148101
Post Box No. 55
Cell. 98769 53561, 98728 74620
Web : www.tarksheel.org
e-mail : tarkshiloffice@gmail.com

BOOK POST
(Printed Matter)

To ....

....

....